आशा-निराशा

(उपन्यास)

लेखक

सत्येंद्र 'शरत्'

मिलने का पता—

निरंजन पुस्तकमाला
निरंजन-पैलेस
१, जांस्टनगंज, प्रयाग

प्रथम बार] १२ अगस्त, १९४७ [मूल्य १)

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्यरत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
७. एन्० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत-हिंदी प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास
९. श्रीकन्हैयालाल, त्रिपोलिया-बाज़ार, जयपुर
१०. हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, हीराबाग़, पो० गिरगाँव, बंबई

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

अपने कलाकार भैया प्रद्युम्नकुमार जैन को

साभार

—सत्येंद्र

पुण्य लूटिए !

गंगा-पुस्तकमाला के लाइब्रेरी-संस्थापक स्थायी ग्राहक बनकर, केवल ६) सालाना खर्च करके अपने यहाँ घरेलू लाइब्रेरी खोलिए। हमारी 'लाइब्रेरी-योजना' कृपया मुफ्त मँगा लीजिए। हम अपनी प्रत्येक पुस्तक पौने मूल्य में देंगे। यह पुस्तक भी पौने मूल्य में मिलेगी। भारत-भर में १,००,००० लाइब्रेरी खुलवाने में हमें मदद दें—घर-घर में साहित्य का सौंदर्य बिखेर दीजिए।

(श्रीमती) सावित्री दुलारेलाल एम्० ए०

संचालिका गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ

वक्तव्य

आशा-निराशा के लेखक श्रीयुत सत्येंद्र 'शरत्' इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय के विद्यार्थी हैं। यद्यपि उन्होंने यह उपन्यास अपने विद्यार्थी-जीवन में ही लिखा है, तो भी इसका कथानक बहुत सुंदर है, चरित्र-चित्रण भी ख़ूबी के साथ किया गया है। भाषा में प्रवाह है। और, वह शुद्ध तथा मुहाविरेदार है। हमें पूरा विश्वास है, इस उपन्यास को हिंदी-संसार—विशेषकर गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहक—पसंद करेंगे।

यदि उनका यह उपन्यास प्रेमी पाठकों को पसंद आया, तो हम उनका दूसरा उपन्यास लेकर शीघ्र ही सेवा में उपस्थित होंगे।

डालमिया-जैन-निवास
नई दिल्ली, मुक्ति-दिवस, १५। ८। ४७

दुलारेलाल
सावित्री दुलारेलाल

हिंदी-प्रेमी ध्यान दें !

भारत स्वतंत्र हो गया ! पर हमारी भारती (हिंदी) को तो अभी राष्ट्र-भाषा के उच्च आसन पर आसीन होना है। यह तभी संभव है, जब आप और हम इसके विकास और प्रचार में दत्तचित्त होकर लगें।

गंगा-पुस्तकमाला ने पिछले २० वर्षों में ६०० पुस्तक निकालकर हिंदी-सेवा करने का तुच्छ प्रयास किया है। पर यह अपने स्थायी ग्राहकों के बल पर ही। अतः यदि आप अभी गंगा-पुस्तकमाला के लाइब्रेरी-संस्थापक स्थायी ग्राहक नहीं बने हैं, तो कृपया बन जाइए। आपको हमारी प्रकाशित सभी पुस्तकों पर २५% कमीशन मिलेगा, और बाहरी हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकों पर ~) रुपया कमीशन। पूरे नियम हमारी 'लाइब्रेरी-योजना' मँगाकर देखिए।

हमारे ८००० स्थायी ग्राहक हो गए हैं। आप यदि स्थायी ग्राहक बन गए हैं, तो कृपया अपने इष्ट-मित्रों और संबंधियों को बनाइए। हमें १,००,००० हिंदी-प्रेमी सज्जनों द्वारा सार्वजनिक और घरेलू लाइब्रेरियाँ भारत-भर में खुलवानी हैं। यदि प्रत्येक स्थायी ग्राहक यह प्रण कर लें कि माला के १२ स्थायी ग्राहक बना देंगे, तो अनायास ही १,००,००० स्थायी ग्राहक बन जायँगे। आइए, हिंदी-माता की पुनीत सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

(श्रीमती) सावित्री दुलारेलाल
संचालिका गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ

आशा-निराशा —

श्रीयुत सत्येंद्र 'शरत'

दो मिनट इधर

अपने को संसार में रखने के लिये पैसा एक आवश्यक वस्तु है। बहुत बार लोग, पैसे के लिये, अपनी इच्छा के विरुद्ध तक कार्य करते देखे गए हैं।

निराशा कला की आधार है। वह कला की संप्रदान है, अपादान नहीं—ऐसा मेरा एक मित्र कहता है। एक स्थल पर उसने लिखा भी है—

"निराशा ही का गान अपना
है कला का सत्य सुंदर।"

प्रत्येक कला, चाहे वह हमें कितना ही आनंद क्यों न प्रदान करे, जीवन की भाँति बिलकुल व्यर्थ और निस्सार है।

'आशा-निराशा' उपन्यास मैंने २० एप्रिल, १९४४ को लिखना शुरू किया था, जब मैं इंटर में पढ़ता था, और थोड़ा लिख, अधूरा ही छोड़ दिया था। इसे पूरा किया गया १९४६ की गर्मी की छुट्टियों में, जब कि मैं इसका कथानक बिलकुल ही भूल गया था। पहले लिखे हुए अंश में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर उसे अब जहाँ-तहाँ छू-भर दिया है। सन् ४४ के कथानक में, मेरे जीवन के भाँति, अनेक परिवर्तन हो गए हैं, और अब जो रूप वह धारण कर सका है, वह आपके सामने है।

लगभग सभी उपन्यास-लेखकों की भाँति मुझे भी पेटीकोट की शरण लेनी पड़ी है। संतोष केवल इतना है कि अधिक की नहीं, केवल दो की ही लेनी पड़ी है।

उपन्यास बहुत हल्का है—ठोस इसमें कुछ नहीं है। न मैंने इसमें किसी वाद का प्रचार करने की चेष्टा की है। मेरा उद्देश्य तो केवल इसे मनोरंजक बनाना ही रहा है।

अपने मित्र देवेंद्रकुमार गौतम को बहुत-बहुत धन्यवाद, जो मेरे मना करने पर भी मेरे कमरे की दीवारों पर अपने कलात्मक चित्र बनाकर मुझे इस उपन्यास के लिये बहुत काफ़ी मसाला दे दिया करते थे।

अतिरिक्त, जिन और साथियों और मित्रों से प्रेरणा मिली है, उन्हें भी धन्यवाद!

आदरणीय श्रीदुलारेलालजी ने उपन्यास के प्रकाशन-संबंधी सभी चिंताओं से मुझे मुक्त कर दिया है। मैं उनके प्रति बहुत आभारी हूँ।

९, पार्क-रोड
इलाहाबाद
२० दिसंबर, ४६

सत्येंद्र 'शरत्'

आशा-निराशा

(१)

आसमान में बादल के टुकड़े इधर-उधर घूम रहे थे।

तूलिका चल रही थी, चित्र बन रहा था, और सिगरेट का धुआँ उड़ रहा था। बादल के काले टुकड़ों को एक 'टच' और देकर कृष्णा ने रंग की 'प्लेट' पास के स्टूल पर रख दी, और वहाँ से हट गया। बुझती सिगरेट फेंककर वह धीरे-धीरे दीवार के आईने के पास आया। आईने पर गर्द थी, उसी प्रकार, जैसे उसके हृदय पर व्यथा का बोझ। मैले रूमाल से आईने को पोंछ वह अपना चेहरा देखने लगा बहुत गौर से, मानो उसके चेहरे में कोई नई बात पैदा हो गई हो। वह मुस्कराया, और अपने मुरझाए हुए चेहरे से स्वयं कहने लगा—"कहिए जनाब! उतर चुका है आपका नशा या नहीं? ......हूँ...बताइए। अच्छा, छोड़ो। मैंने कहा, क्या नए हो बने रहकर भूखों मरने का इरादा है? अब तो जेब बिलकुल खाली हो गई है।.......फिर......? अच्छा, अब उठो तो। चलो, एक-दो चित्र बग़ल में दाब 'सिविल-लाइंस' के बँगलों को खाक छानो। अगर तक़दीर अच्छी हुई, तो कुछ दिनों का खर्च तो निकल ही जायगा,

नहीं तो भैया, मज़ा करना, और तबियत भरकर ठंडा पानी पीना।"

कृष्ण चित्रकार था। सदैव चित्र बनाया करता था, या फिर ख़ाली बैठकर सिगरेट पीता हुआ कुछ सोचा करता था। उसे संसार में केवल चित्रकला से ही प्रेम था, और शायद उसकी सबसे प्रिय वस्तु उसकी तूलिका ही थी।

ईश्वर ने उसे अकेला रख छोड़ा था, और इस कारण अब वह अकेला ही रहना पसंद करता था। यहाँ आए हुए उसे केवल एक ही सप्ताह हुआ था। इससे पहले वह न-जाने कहाँ था ? यहाँ आते ही उसने नदी का किनारा और उसके पास का छोटा-सा वन अपनी पेटेंट जगह बना ली, और पूरा हफ़्ता वहीं चित्र बनाने में काट दिया। सुबह होते ही वह चित्र बनाने का सामान और बिस्कुटों का डिब्बा साथ ले उसी घने कुंज में आ जाता, और घंटों तक सिर झुकाए चित्र बनाने में लीन रहता। फिर टहलकर चकित दृष्टि से प्रकृति की शोभा निहारने लग जाता। जब शाम हो जाती और अँधेरा होने लगता, तब वह अपना सामान बटोर सिगरेट फूँकता हुआ मजे-मजे घर लौट आता। अपने कमरे में आकर वह स्टोव पर चाय बनाता, और गिनती के तीन कप पीकर सो जाता।

कमरे का सब सामान अस्त-व्यस्त रूप में पड़ा था। बाँस की चारपाई उसके बिस्तर का बोझ अधिक दिन तक सँभाले

रखने से इनकार कर रही थी। कोनों में मैले कपड़ों, सिगरेट के टिनों और डिब्बों, मकड़ी के जालों आदि का अच्छा खासा संग्रह था। फ़र्श पर सब ओर सिगरेट के टोटे बिखरे पड़े थे। आले में कहानियों के अख़बार और किताबें ठुँसी हुई थीं। बाँस की मेज़ पर स्टोव और चाय के बरतन रक्खे हुए थे। उसके पास ही रस्सी पर उसकी पतलूनें और पाजामे टँगे हुए थे।

थोड़ा हटकर दो स्टैंड रक्खे हुए थे। एक पर कुछ चित्र बिस्तर की फूलदार चादर से ढके हुए रक्खे थे। शायद वे पूरे हो चुके थे। दूसरे स्टैंड पर उसका अधूरा चित्र था। कमरे में चित्र उसी स्टैंड पर बनता था।

कमरे में अपना सामान पटक चुकने के दूसरे रोज़ कृष्णा ने सामान को ठीक तरह से 'एरेंज' करने की काफ़ी कोशिश की थी, और इसमें डेढ़ घंटा के लगभग समय भी ख़र्च कर दिया था। लेकिन कोशिश और समय, दोनो ही बेकार गए, क्योंकि सामान तरतीब से न लग सका। कृष्णा ने कई ढंगों से सामान सजाया, लेकिन कोई भी रूप उसे जँचा नहीं। खीजकर, पसीने में सराबोर हो उसने सामान जहाँ-का-तहाँ वैसा-का-वैसा ही रहने दिया, जो अब तक उसी हालत में था। यहाँ तक कि वह टूटी चप्पल भी खूँटी पर वैसी-की-वैसी ही टँगी थी, जैसा उस रोज़ कृष्णा ने झल्लाकर अटका दी थी।

उससे पहले, उस कमरे में या तो कोई भावुक अर्द्ध-साहि-

त्यिक जीव रहते थे, या कोई सिनेमा-प्रेमी, जिन्होंने 'राम-राज्य' कम-से-कम नौ बार तो अवश्य ही देखा होगा—ऐसा अनुमान कृष्णा ने पहले ही दिन कर लिया था, क्योंकि एक दीवार पर बीच में, लाल चॉक से, मोटे अक्षरों में, लिखा हुआ था—"भावना से कर्तव्य ऊँचा है।" और कृष्णा इस वाक्य की सत्यता में संदेह कर अनायास ही मुस्करा पड़ा था।

किंतु जो कुछ भी हो, उसने पुराने किराएदार के इस उद्गार को मिटाने की तनिक भी चेष्टा न की थी। वह दीवार पर उसी रूप में मौजूद था, और कृष्णा के शाम को अँधेरे में दियासलाई से लालटेन जलाते समय, दियासलाई के प्रकाश के साथ ही, भक से चमक उठता था।

नए-नए डिज़ाइन के बढ़िया, सुंदर बँगले और कोठियाँ, नफ़ीस बाग़ीचे, जिनके ख़ूबसूरत फूल ख़ुशबू फैलाते हैं, पोर्टिकों में खड़ी चमकती कारें, चिकनी सड़कें और ऊपर आकाश में ईश्वर की केवल उसी भाग में बिखेरी हुई विशेष कृपा (special favour)। ऐसा मालूम होता है, जैसे स्वर्ग के किसी हिस्से में आ गए हों, जहाँ ग़म, दर्द और आँसुओं का नाम तक न हो।

कृष्णा रुक गया। आगे खिसक उसने 'नेमबोर्ड' पढ़ा— रायसाहब बनारसीदास गुप्त। दिमाग़ के लावे से ख़याल टकराया—क्यों न यहीं तक़दीर आज़माई जाय—और वह फाटक खोल अंदर घुस गया।

बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने ऊपर दृष्टि उठाई। सामने 'कोई' खड़ी थी। दो दृष्टियाँ आपस में टकराईं, और दो ओर को ढुलक पड़ीं। कृष्णा ठिठक गया।

"आइए, चले आइए। पिताजी अंदर हैं।" सुंदर शब्दों द्वारा कृष्णा का स्वागत किया गया। वह सँभलकर अंदर चला आया।

"मैं यह चित्र लाया हूँ।" चित्र मेज़ पर रखते हुए कृष्णा ने रायसाहब से कहा।

"मुझे आपका यह चित्र बहुत ही पसंद आया है......। आप बहुत सुंदर चित्र बनाते हैं......।" सुधा ने चित्र देखते ही एक साँस में सब कुछ कह डाला।

कृष्णा के उत्तर देने से पहले ही सुधा के पिता रायसाहब बनारसीदास बोले—"मुझे भी यह चित्र बहुत पसंद आया है, आर्टिस्ट साहब! आपने इसे बनाने में कमाल कर दिया है। 'आज का हिंदुस्थान'—वास्तव में ही यह चित्र अपने नाम को सार्थक करता है। आज के हिंदुस्थान के लोगों की यही दशा है। ये वे खड़े हैं। सामने निराशा का काला पर्दा पड़ा हुआ है। पराधीनता की कड़ी शृंखलाओं से इनके पैर जकड़े हुए हैं। ऊपर उठे हुए हाथ मानो सहायता की याचना कर रहे हैं। इसके दूसरी तरफ़......ओ, माफ़ कीजिएगा, आप खड़े क्यों हैं? बैठ जाइए न। अ...आराम से बैठिए।"

कृष्णा ने मुस्कराते हुए कहा—"जी, मैं बिलकुल ठीक हूँ। आप चिंता न कीजिए।" इसके बाद वह पास की कुरसी पर बैठ गया।

रायसाहब ने पूछा—"हाँ, तो मिस्टर, आपका नाम क्या है?"

कृष्णा चेहरे पर मंद मुस्कान लाकर बोला—"जी, मेरा नाम कृष्णा है।"

"कृष्णा, यानी मिस्टर कृष्णकांत। ठीक है, ठीक है।"—रायसाहब जैसे निश्चिंत हो गए।

सुधा ने प्रश्न किया—"मिस्टर कृष्णा, इन दिनो भी आप कोई चित्र पूरा कर रहे हैं ?"

कृष्णा ने कुछ झिझककर उत्तर दिया—"जी हाँ, आज-कल भी एक चित्र बना रहा हूँ। अभी समाप्त नहीं हुआ है।"

सुधा ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—"कब तक समाप्त हो जायगा ?"

कृष्णा ने बहुत साहस बटोरकर कहा—"जी, जब यह चित्र बिक जायगा।" एक क्षण बाद वह समझाते हुए बोला—"बात यह है कुमारीजी कि उस चित्र के लिये कुछ नए रंग आदि खरीदने पड़ेंगे, और बाजार की हालत आप जानती ही हैं........"

रायसाहब अपना घुटा सिर हिलाते हुए, कृष्णा की बात काटकर बोले—"ठीक है, ठीक है! मिस्टर कृष्णा, आप अपना यह चित्र यहीं छोड़ जायँ। मुझे यह चित्र बहुत अधिक पसंद है—'आज का हिंदुस्तान'।"

कृष्णा की ओर दृष्टि घुमाते हुए सुधा ने पूछा—"आप के पास तो बढ़िया-बढ़िया चित्रों का एक सुंदर-सा 'कलेक्शन' होगा ?"

कृष्णा ने यथार्थवादी टोन में उत्तर दिया—"जी, यह 'हॉबी' तो पैसे वालों की होती है—हम-जैसों की नहीं। सुंदर और कला-पूर्ण चित्र इकट्ठे करना बड़े आदमियों के लिये 'नेसेसरी' या 'कम्फर्ट्स' की वस्तु हो सकती है, लेकिन हम-

जैसों के लिये तो यह सरासर 'लकसरी' होगी।" फिर रुक-कर बोला—"मेरे पास तो मेरे ही बनाए दो-तीन चित्र और होंगे, जो बिकने से बच गए हैं।"

सुधा पहले तो कुछ सकपका-सी गई, फिर अपनी कौतूहलता को ऊपर लाकर बोली—"अगर आप बुरा न मानें, तो मैं कहूँगी कि मैं उन चित्रों को देखना चाहती हूँ। आप अपने मकान का पता बता दीजिए। हम वहाँ उन तस्वीरों को देखने आएँगे।"

लेकिन कृष्णा तो वाक्य के पहले ही अंश में उलझ गया था—आगे कुछ न सुन सका। उसके चित्रों को देखने की इच्छा प्रकट करने से वह बुरा मानेगा—ऐसी आशंका इस सामने बैठी हुई युवती को क्यों हुई? फिर वह होता ही कौन है, जिसके भला-बुरा मानने का कोई ख़याल करे? इतनी जल्दी यह आत्मीयता?...क्या इसे नारी-जाति की प्रवंचना समझा जाय?

"देखा आपने?" रायसाहब बोले—"हमारी सुधा को चित्र-कला से बहुत प्रेम है। सुधा ने एक बार चित्रकारी सीखने की इच्छा भी की थी, लेकिन यहाँ शहर में कोई 'आर्ट स्कूल' ही न था। बहुत शौक़ के कारण कभी ख़ुद ही चित्र बनाने बैठ जाती थी, लेकिन बनाती थी हिरन और बन जाता था गधा।" वह ठठाकर हँस पड़े।

सुधा लज्जा से लाल हो गई। रायसाहब ने देखा,

कृष्णा गंभीर-सा हुआ बैठा है, पूछा—"क्या सोचने लग गए आप ?"

"जी, कुछ नहीं।" कृष्णा कुछ लज्जित-सा होकर बोला।

"अच्छा, तो आप अपना पता दे दीजिए न फिर।" सुधा ने याद दिलाया। कृष्णा कुछ सोच में पड़ गया। घनिष्ठता और आत्मीयता का वह आदी नहीं। वह नहीं चाहता, कोई उससे चिपकता जाय। किसी के प्रेम और स्नेह की उसे इच्छा नहीं। इसी कारण वह अपना शहर छोड़ यहाँ आया है। अब यहाँ फिर वे ही बंधन...? कहने लगा—"पता तो मैं दे दूँगा, लेकिन वहाँ तक पहुँचने में आपको काफ़ी दिक़्क़तें और परेशानियाँ होंगी। शहर का वह हिस्सा बहुत ग़रीब और गंदा है।"

लेकिन सुधा तो उसका पीछा न छोड़ना चाहती थी, सिर हिला बोली—"कोई परवा नहीं। हम मुसीबतें ही झेलते हुए आ जायँगे। बस, आप पता लिख दीजिए।"

मजबूरी थी। बुझे-से दिल से पेन उठाकर कृष्णा ने पैड पर अपना पता टाँक दिया।

पता पढ़ती हुई सुधा रायसाहब से कहने लगी—"पिताजी, कब चलिएगा फिर मिस्टर कृष्णा के यहाँ? अगर हम कल सुबह कृष्णाजी के 'स्टूडियो' में चलें, तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी?"

रायसाहब सिर हिलाते हुए बोले—"वहीं चलना। इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है?"

कृष्णा बोला—"लेकिन मुझे इसमें आपत्ति है। आप मेरे झोपड़े को 'स्टूडियो' क्यों कह रही हैं ?"

रायसाहब और सुधा, दोनों हँस पड़े। सुधा ने नक़ली गंभीरता से कहा—"ग़लती हो गई। माफ़ कर दीजिए।"

कृष्णा ने अनुभव किया, सुधा की इन अदाओं द्वारा वह परास्त होता जा रहा है। उठ खड़ा हुआ, बोला—"जी, तो अब आज्ञा दीजिए। काफ़ी समय हो चुका है।"

"अभी ?" सुधा ने आश्चर्य प्रकट किया। "चाय तो पी लीजिए। अभी आ रही है।"

रायसाहब ने अपने सिर पर हाथ फेरते हुए नौकर को आवाज़ दी—"अरे मंगल, चाय लाओ भाई जल्दी।"

"मैं लाती हूँ।" कहकर सुधा झटपट अंदर चली गई। कृष्णा फिर बैठ गया।

---

(३)

घूम-घूमकर कृष्णा के मन में एक बात आ रही थी, और वह यह कि पहली भेंट में सुधा उससे यह कैसे कह बैठी—"यदि आप बुरा न मानें.........।" जो बिलकुल अपने होते हैं, या जिनसे कुछ भी घनिष्ठता होती है, उनके ही बुरा-भला मानने का विचार दिल में पैदा होता है। वह सुधा का कुछ नहीं। एक घंटा पहले वह सुधा के लिये बिलकुल अपरिचित था, फिर क्या हो गए वे कारण, जिनसे सुधा को यह चिंता हो गई कि कहीं वह बुरा न मान जाय ? उसके, एक मामूली चित्रकार के बुरा मान जाने से सुधा, रायबहादुर की इकलौती लड़की, का क्या बनता-बिगड़ता ? फिर उसका पता लेने का भी क्या अर्थ है ?...क्या सुधा उससे परिचय बढ़ाना चाहती है ? लेकिन क्यों ? क्या कारण है इसका ?... क्या यहाँ भी वह इस मृगजाल में फँसाया जा रहा है ?... एक नाग-फाँस से तो वह अपने को जैसे-तैसे मुक्त कर के यहाँ आया है, और यहाँ इस बंधन में फिर जकड़े जाने की आशंका ?......

नारी के प्रति कृष्णा का अनुभव ताजा ही है, और इसी कारण वह सुधा-जैसी सुंदरी युवती से घनिष्ठता स्थापित नहीं करना चाहता। वह अपनी कमजोरी जानता है—कलाकार-

हृदय सौंदर्य-प्रेमी होता है। वह जानता है, यदि वह आगे बढ़ा, तो सँभल न सकेगा, और डगमगा जायगा। वह इसी स्थल पर अब कठिनता-पूर्वक सध पाया है।

और, नारी-हृदय से परिचित होने की आकांक्षा मन में लिए जब कृष्णा के अंदर का कलाकार इस दिशा में आगे बढ़ा था, तो उसे किस बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी थी। सिगरेट पीते हुए कृष्णा को स्मरण आ गया वह दिन, जब वह अपने चित्र 'समर्पण' के लिये 'मॉडेल' की तलाश में आई० टी० कॉलेज के गेट पर खड़ा था। उस दिन की समस्त घटनाएँ उसके मानसिक क्षितिज पर आँख-मिचौली खेलने लगीं।

तीन का समय था। छुट्टी हो गई थी। लड़कियाँ पाँच-पाँच, छ-छ की टोलियों में अपने-अपने घर जा रही थीं। कृष्णा आवारा दृष्टि से उन्हें घूर रहा था—ओह! कोई उसके चित्र के लिये उपयुक्त नहीं है। इतना बड़ा कॉलेज! और इसमें कोई भी उसकी पसंद का चेहरा नहीं। तो क्या उसे अपने चित्र की नायिका को कल्पना-लोक से ढूँढ़ लाना होगा?......

लड़कियाँ उसे 'युनिवर्सिटी लोफ़र' समझ, मन-ही-मन में घुट, चुपचाप अपने ताँगों में बैठ या पैदल आगे बढ़ी जा रही थीं।

सहसा एक टोली उसके निकट आई। कृष्णा ने देखा, उसके चित्र का 'मॉडेल' उसके सामने से गुजर रहा है। वैसा ही विशाल मस्तक, चमकते नेत्र और वैसी ही सीमा को

लाँघती हुई सुंदर नाक—ठीक जैसी कि वह अपने चित्र की नायिका के लिये चाहता था। वह लड़की अपने गोरे और सुडौल शरीर को आसमानी रंग की साड़ी में छिपाए आगे बढ़ रही थी।

एक अपरिचित व्यक्ति को अपनी ओर इस प्रकार घूरते देख उसे कुछ विचार आया, कदाचित् यह कि वह बहुत सुंदर है, और यह हजरत उसे इस बेटाइम घूरकर उसके हुस्न की इज्जत-अफ़ज़ाई न कर उसके रूप को कुछ कम कर रहे हैं। अपनी सहेलियों की, जो मुस्कराती हुई उसके कोहनियाँ मार रही थीं, आँखों में देख उसने कृष्णा को उसके इस अवांछित व्यवहार की सजा देने का निश्चय किया ही था कि कृष्णा ने प्रार्थना की—"ज़रा सुनिएगा।"

दूध की जली वह युवती कृष्णा के तमाचा कसने को तैयार हो गई। इस शोहदे की हिम्मत तो देखो, ठीक कॉलेज के सामने रोमांस लड़ाने चला है। बस, अब आकर प्रेम-राग अलापने लगेगा।

पास आकर कृष्णा ने कहा—"मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।" उसकी ओर इशारा था।

अपनी सहेलियों के हँसने और खखारने से जलकर वह बोली—"क्या कहना चाहते हैं?"

कृष्णा साहस खोने लगा। टूटे-फूटे शब्दों में बोला—"मैं......मैं आपका एक चित्र बनाना चाहता हूँ..।"

"चित्र..." वह उबल पड़ी, "और हम आपका कार्टून बनाना चाहती हैं। अभी, इसी समय।" और किताबें एक ओर फेंक वह अपने सैंडिल खोलने लगी।

कृष्णा के काटो, तो खून नहीं। सहमकर बोला—"आप मुझे बिलकुल ग़लत समझ रही हैं। मेरा यह मतलब नहीं है।"

"जी हाँ, अब तो आपका मतलब भी दूसरा हो गया होगा—हाथ में सैंडिल जो देख लिया है। जी में तो आता है कि जड़ दूँ पाँच-सात इस चेहरे पर। शर्म नहीं आती शरीफ़ लड़कियों को रास्ते में, इस तरह छेड़ते हुए?"

इस दशा में न कृष्णा ही सही बात समझा सकता था, और न वही समझ सकती थी। क्षमा माँगने के अतिरिक्त कोई चारा न था। निदान रोते चेहरे से कृष्णा ने क्षमा माँगी—"क्षमा करो भवानी, बड़ी भूल हुई, जो तुमसे दो शब्द कह दिए। क्या पता था कि तुम काट खाने को दौड़ोगी?"

और, उस देवी की डसती हुई आँखों द्वारा विषाक्त हो चुकने के बाद वह जला-भुना यही सोचता घर लौटा कि यह सारी तेज़ी-तर्रारी उसी-जैसे सीधे-सादों के लिये है। किसी टॉमी के शराब में चूर दशा में इनका हाथ पकड़ लेने पर इनका बाल तक न फूटता, और यह बिना किसी विरोध के उसके साथ चली चलतीं—जहाँ कहीं भी वह इन्हें ले जाता—जैसे उसने इन्हें किराए पर ले रक्खा हो।

कृष्णा को इस घटना से बहुत आघात पहुँचा। अपने इस दुःख को काम द्वारा बटाने का निश्चय कर उसने 'समर्पण' चित्र पूरा करना शुरू कर दिया। उसके लिये अब वही उस रोज़ की एक ही छटा काफ़ी हो गई। उसके आधार पर और अपनी कल्पना तथा प्रतिभा का पूरा उपयोग करते हुए उसने चित्र पूरा कर ही लिया, और न-जाने क्या सोच उसे 'आर्ट स्कूल' की 'एक्सीबीसन' में प्रदर्शन-हेतु भेज दिया।

विद्यार्थियों के बनाए हुए चित्रों में से डायरेक्टर साहब को कृष्णा का बनाया हुआ 'समर्पण' चित्र भी बहुत पसंद आया था, जिसमें से कृष्णा के अंतर की कविता उमड़ी पड़ रही थी। वे सब चित्र एक अलग कमरे में रख दिए गए। बीच की टेबल पर रक्खा गया कृष्णा का 'समर्पण', जिसमें कृष्णा का कवि अपनी प्रेमिका से कह रहा था—"तुम समर्पण बन भुजाओं में पड़ी हो।"

अपनी सहेलियों के साथ अमिता भी 'एक्सीबीसन' में तफ़रीह करने आई। उसने भी 'समपर्ण' देखा, और अनुभव किया कि चित्र की स्त्री का चेहरा उसके नक़्शे से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, और कलाकार को स्त्री-चित्र अंकित करने में अत्यधिक सफलता मिली है। चित्र की स्त्री निस्संदेह अमिता से सुंदर थी। उसे कौतूहल हुआ चित्र के चित्रकार के प्रति, और तभी उत्सुकता ने आ घेरा—वह चित्रकार को देखना चाहेगी। उससे मिलना चाहेगी। अवश्य। निस्संदेह

वह महान् कलाकार होगा, जिसकी कल्पना इतनी सजीव है, तथा ईश्वर की सृष्टि से भी अधिक सुंदर है।

उसने ऑफ़िस से मालूम किया—चित्रकार का नाम मिस्टर नंदन। क्लर्क से पूछने लगी—"वह यहाँ 'एक्सीबीसन' में नहीं आते किसी टाइम ?"

"हमने तो कभी देखा नहीं उन्हें यहाँ। लेकिन उनकी क्या बात कहनी? कलाकार-हृदय जो ठहरे। उन्हें इतना टाइम ही कहाँ मिलता होगा।" क्लर्क ने अपनी योग्यता जताते हुए कहा।

"अच्छा, तो उनके घर का पता दे दीजिए।" अमिता ने दूसरी माँग की।

"जरा ठहरिए। मैं डायरेक्टर साहब से मालूम करके लाता हूँ।" वह फ़ुर्ती से दूसरे कमरे में चला गया।

उसकी तत्परता देख मुस्कराती हुई अमिता को कदाचित् यही विचार आया कि जनाना चेहरा देख मर्द-जाति कितनी जल्दी पिघल जाती है।

काग़ज़ का टुकड़ा, जिसमें पता लिखा हुआ था, हाथ में ले अमिता ने अपनी कलाई की सुनहरी छोटी-सी घड़ी देखी, और अनुमान लगाया कि चित्रकार मिस्टर नंदन के मकान तक पहुँचने और घर लौटने में उसे आठ-सवा आठ से अधिक नहीं बजेंगे। अपनी दो सहेलियों को साथ ले वह ताँगे पर बैठ गई।

मकान ढूँढ़ने में अधिक कठिनाई न हुई। दरवाज़े पर 'मिस्टर नंदन' की आवाज़ लगाते ही अंदर से उत्तर मिला—"कौन ? चले आइए। दरवाज़ा खुला है।" लेकिन कमरे में प्रवेश करते ही अमिता और उसकी सहेलियाँ जैसे अकाश से गिरीं। कमरे में वही नवयुवक मौजूद था, उसी रोज-वाला, जिस रोज पैर की इज्ज़त हाथ में आते-आते बच गई थी। तो क्या यही नवयुवक चित्रकार नंदन है ? 'समर्पण' का निर्माता ?

किंतु कृष्णा को अधिक आश्चर्य न हुआ। वह अत्यंत साधारण भाव से बोला—"बैठिए, कहिए, आज कैसे कष्ट किया आपने ?"

अमिता और उसकी सहेलियों का तो मौन जैसे टूटने ही न आता था। काफ़ी समय बाद अमिता पूछ सकी—"आप ही मिस्टर नंदन हैं ? 'समर्पण' आपने ही......?"

"जी हाँ, जी हाँ, मैं ही हूँ। कहिए, क्या आज्ञा है ?" कृष्णा ने बात काटी।

"आज्ञा कुछ नहीं। हम तो आपको बधाई देने आए थे। बहुत सुंदर चित्र बनाया है आपने। बिलकुल सजीव, मानो जीता-बोलता हो।"

"जी हाँ, जीती, बोलती, धमकाती मूर्ति से ही प्रेरणा मिली थी। ख़ैर, आपको चित्र पसंद आया। इसके लिये धन्यवाद !" कृष्णा ने रिमार्क किया।

दूसरे रोज़ कृष्णा बड़े अच्छे मूड में था। बात यह थी कि 'आर्ट-स्कूल' के डायरेक्टर मिस्टर मजूमदार ने उसे अपने बँगले पर बुला, उसके साथ एक घंटे तक ख़ूब घुल-मिलकर बातचीत की थी। अपनी नवयुवती सुंदरी पत्नी से भी उसका परिचय कराया था, जिसके चेहरे के भाव (facial expressions) कृष्णा ने बहुत पसंद किए थे। और, चलते समय संक्षेप में एक चाय-पार्टी भी हो गई थी।

दुबारा फिर बँगले पर आने का वायदा कर कृष्णा झूमता हुआ सड़क पर आया। सामने पनवाड़ी की दूकान पर पहुँच उसने दो पान बनवाए, और एक 'विल्स' की डिब्बी ली। सिगरेट पीते हुए सोचने लगा कि अब कहाँ चलना चाहिए, जिससे शाम का टाइम मज़े में कट जाय। जगत में 'देवदासी' लगा हुआ था। विचार किया, मोनिका की ऐक्टिंग देखनी चाहिए। उसे अन्य अभिनेत्रियों की अपेक्षा मोनिका देसाई विशेष रूप से पसंद है।

कृष्णा दस आनेवाली सीट में बैठकर सिनेमा देखनेवालों में से है। उसका प्रश्न है कि ऐश भी किया जाय, और पैसे भी ख़र्च किए जायँ? लेकिन आज वह न-जाने क्या सोचकर सवा रुपए की सीट में बैठा।

खेल खत्म होने पर हॉल से बाहर आते समय कृष्णा ने देखा, अमिता एक अप-टू-डेट नवयुवक के साथ 'बॉक्स' की सीढ़ियों से उतर रही है। उसे देख अमिता ने अपने साथी से फुसफुसाते स्वर में न-जाने क्या कहा। वह मुस्कराता हुआ और कृष्णा को बड़े ध्यान से देखता हुआ तेजी से आगे बढ़ गया। कृष्णा अपने को बचा भीड़ में मिलना ही चाहता था कि अमिता ने आवाज दी—"मिस्टर नंदन !"

कृष्णा रुक गया। अमिता उसके पास आ गई। आज कृष्णा उसका सामना करने को तैयार था। सहज मुस्कान चेहरे पर ला, हाथ जोड़कर बोला—"नमस्ते !"

मुस्कराती और भौंहें मटकाती अमिता ने नमस्ते का उत्तर न देकर अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। कृष्णा को हाथ मिलाना ही पड़ा। उसका हाथ अपने हाथ में ही लिए वह हँसती हुई बोली—"कहिए, भागे जा रहे थे न ? अब तो पकड़े गए ?"

हाथ छुड़ाते हुए कृष्णा बोला—"नहीं, यह बात नहीं, यह हाथ तो मैंने आपको उबारने के लिये आगे बढ़ाया था।"

अमिता सहसा कोई उत्तर न दे सकी। कृष्णा ने आगे कहा—"एक बात समझ में नहीं आई। आप सिनेमा देखने कैसे आईं ?...यानी क्यों ?"

"और आप क्यों आए ? बस, जैसे आप आ गए, वैसे हम भी आ गए।" अमिता ने हल्का-सा उत्तर दिया।

"अजी, हमारी बात छोड़िए। हमारी, तो सिनेमा आने की

वजह ही दूसरी है। हम तो अपने अभावों की पूर्ति के लिये सिनेमा देखने आ जाते हैं। जो आराम और सुख पहुँचाने-वाली चीजें हमें यहाँ नहीं मिल पातीं, जिनकी बाबत हम सिर्फ़ कल्पना ही कर पाते हैं, वे यहाँ 'पिक्चर' में अच्छी तरह देख लेते हैं, और पिक्चर के पात्रों को उनका मजा लेते देख, हम भी यही समझने लग जाते हैं कि हमें भी ये वस्तुएँ प्राप्त हैं, और हम इनका उपभोग कर सकते हैं, तथा इस समय कर भी रहे हैं। लेकिन आप लोग अपने कौन-से अभावों को पूरा करने यहाँ आते हैं ?"

अमिता ने भी प्रश्न किया—"कौन-सी हैं वे चीजें, जिनके अभाव की पूर्ति करने आप यहाँ सिनेमा में आते हैं ?"

"मसलन्" कृष्णा सोचता हुआ बोला—"मसलन्, बँगला, कार, रेडियो, सोफ़ासेट, कई-कई नौकर और, और गाना जाननेवाली सुंदर प्रेमिका, पूर्णमासी की चाँदनी-जैसा निखरा हुआ उसका प्रेम तथा अंत में उससे ब्याह।"

अमिता खिलखिला पड़ी, और कर ही क्या सकती थी। एक से दो भले। कृष्णा भी हँस पड़ा।

"क्यों, अब चलना नहीं है यहाँ से ? यहीं रहने का इरादा है क्या ?"

"ओह !" अमिता को ख़याल आया। मंत्र-मुग्ध-सी बोली—"चलिए।"

कृष्णा ने ताँगा किया। अमिता को बैठाते हुए पूछा—

"आपका बँगला कहाँ है ? ताँगेवाले को तो बता दीजिए जरा ।"

"सदर ।" अमिता ने बतलाया । कृष्णा ताँगेवाले से बोला—"देखो जी, इन्हें सदर में छोड़ देना ।" फिर अमिता से कहने लगा—"अच्छा, तो नमस्ते । यह ताँगेवाला आपको आपकी कोठी पर छोड़ देगा, और मैं अब चलता हूँ ।"

अमिता ने कहा—"वाह, यह अच्छी रही । मुझे ताँगे पर अकेली भेज, आप खुद पैदल जाएँगे । आप भी यहाँ आ जाइए न । ह्विवेट रोड पर उतर जाइएगा ।"

"अच्छा ।" कह कृष्णा भी अमिता के निकट बैठ गया । ताँगा चलने लगा । कुछ दूर चल सहसा कृष्णा ने पूछा—"अरे हाँ, वह जो आपके साथ सज्जन थे, मैं जान सकता हूँ, कौन थे ?"

अमिता ने तुरंत उत्तर दिया—"अब कहा आपने ? अब तो वह चले गए हैं । सामने होते, तो आपका 'इंट्रोडक्शन' करा देती ।" फिर रुककर बोली—"हमारी जान-पहचान के हैं । हमारे क्लब के सेक्रेटरी ।"

"मैं समझा, आपके प्राइवेट सेक्रेटरी ।" कृष्णा ने हल्का व्यंग्य किया, "आपके साथ-साथ थे न ?" उसने अपनी स्थिति साफ़ की ।

अमिता ने कृष्णा के चेहरे की ओर देखते हुए यह भाव प्रकट किया, जैसे कह रही हो—"इस आदमी को क्या कहा जाय ?"

हिवेट रोड पर कृष्णा ताँगे से उतर पड़ा। अमिता से कहने लगा—"अकेले जाने में तो आपको कोई डर नहीं होना चाहिए। भला-चंगा आदमी तो वैसे भी आपको कुछ नहीं कह सकता। बात-बात पर आप सैंडिल खोलती हैं।"

अमिता कुछ न बोली। नमस्ते कर जाते हुए कृष्णा से यह तक भी न पूछा कि कल कहाँ और किस समय मिलिएगा, हालाँ कि यह बात ताँगे पर बैठते समय से ही उसके मन में रेंग रही थी।

---

(५)

अमिता को कृष्णा से मिलने में ज़रा भी झंझट न हुआ। नई शाम वह उसे 'आर्ट-एक्सीबीशन' में उसकी आशा के विपरीत मिल गया। अमिता को बहुत प्रसन्नता हुई। कृष्णा सिगरेट पीता हुआ उसके निकट आया, और नमस्ते का उत्तर दे कहने लगा—"बड़े आश्चर्य की बात है, आज भी आप मिल गईं। तीन दिन से बराबर आपकी और मेरी मुलाक़ात हो रही है। पता नहीं, क्या कारण है? अब देखना है......"

"क्या?"

"यही कि कल भी आपकी और मेरी मुलाक़ात होती है या नहीं, और फिर परसों, फिर नरसों, फिर सरसों? इसी तरह से।" वह हँस पड़ा।

"यह तो आपके ऊपर निर्भर है।" अमिता ने कहा।

"अच्छा जी! और आपके ऊपर नहीं?" कृष्णा ने किंचित् आश्चर्य-पूर्वक कहा।

"हाँ-हाँ, मुझ पर भी।" अमिता हँसने लगी।

इसी समय कृष्णा का एक साथी पास से गुज़रा। शायद उसे कुछ रश्क हुआ, क्योंकि उसी समय वह कृष्णा से बोला—"जिओ कृष्णा, खूब गहरा हाथ मार रक्खा है भाई!"

"तुम्हारी छाती में क्यों भट्ठी सुलगती है ?" कृष्णा ने प्रत्युत्तर में कहा। लाज दूर होते ही अमिता बोली—"इन हजरत ने आपको किस नाम से पुकारा था ?"

"कृष्णा" उसने बतलाया।

"लेकिन आपका नाम तो......" अमिता ने उलझते हुए कहा। "जी, मेरा नाम कृष्णानंदन है। दोनो नाम ठीक हैं।" कृष्णा ने समझाया।

"अच्छा ऽऽ", अमिता समझ गई।

"हाँ, आपको कल का खेल कैसा लगा था ?" कृष्णा ने पूछा।

"अच्छा था। ऐक्टिंग पृथ्वीराज का पसंद आया। मोनिका ने कोई खास ऐक्टिंग नहीं किया और न के० सी० डे० ने।" अमिता ने अपनी राय प्रकट की।

"मेरे खयाल से, अगर आपको मोनिका की जगह रखते, तो शायद आप उतना भी ऐक्टिंग न कर पातीं। वह तो बेचारी काफी अच्छी तरह निभा ले गई है"

"मैं कब कहती हूँ, मैं ऐक्टिंग कर सकती हूँ, और वह भी मोनिका से अच्छा ?" अमिता ने कुछ तेजी से पूछा।

"अच्छा! मैं तो समझता था कि अभिनय करना हरएक स्त्री को आता है। वह सुंदर-से-सुंदर अभिनय कर सकती है, और करती है।"

सहसा वह फिर बोला—"लेकिन आप इस समय 'एक्सी-

बीशन' देखने आई हैं, या मुझसे बातें करने ? बातें हो चुकीं। जाइए, अब 'आर्ट' के उत्तमोत्तम नमूने देखिए।"

अमिता ने प्रार्थना की—"तो आप भी मेरे साथ चलिए। आप हरएक चित्र तथा उसके छिपे हुए भाव को मुझे समझाते रहिएगा।

"चित्र के भाव समझे जाते हैं कुमारीजी, समझाए नहीं। फिर मेरे पास इस काम के लिये फ़ुर्सत नहीं है। नमस्ते।" वह सनकी की तरह एकदम कमरे से बाहर हो गया।

अपमान के कारण अमिता का चेहरा काला पड़ गया। वह विचारने लगी—कितनी उपेक्षा भरी है, इस अपने में ही संकुचित मनुष्य में। उसे किसी की परवा नहीं। किसी के रूठने की चिंता नहीं। वह तो केवल अवहेलना करना जानता है, केवल ठोकरें मारना।

'एक्सीबीशन' देखने की उसकी इच्छा न हुई। भारी हृदय लिए वह लौट चली। मोड़ के पास देखा, सामने साइकिल की दूकान में कृष्णा हवा भरवा रहा है। अमिता को देख वह हाथ हिलाने लगा। अतिमा ने ताँगा रुकवाया।

पास आकर कृष्णा ने देखा, अमिता बहुत बुरा मान गई है। उसके चेहरे पर भी ऐसे भाव अंकित हो गए हैं। बुरा मान गई है, तो क्या करे वह ?...... मानती है, तो मानने दो... एक दफ़ा नहीं, सौ दफ़ा।

प्रकट में यथासाध्य नम्र होकर बोला—"अरे अमिता-

देवी, लौटने लगीं आप ? बिना 'एकसीबीशन' देखे ही ? क्यों ?"

"ऐसे ही। ज़रा सिर में दर्द हो रहा है।"

"अच्छा, तो कल आइएगा न ? आपको सब चित्र बतलाएँगे। सचमुच ही मुझे आज फ़ुर्सत नहीं है।" कृष्णा ने विश्वास दिलाया।

अमिता अंदर से प्रसन्न हो उठी, किंतु बाहर से भारी ही बनी रही। कृष्णा ने तब ताँगेवाले से आगे चलने को कहा।

कृष्णा ने भी अपनी साइकिल उठाई, और वह दूसरी ओर मुड़ गया।

---

(६)

अमिता की सहेली लेखा ने पूछा—"कहो, तुम्हारे चित्र बनानेवाले साँवलिया के क्या हाल हैं ? उनको 'डिफ़ीट' (पराजय) दे दी या नहीं ?"

अमिता मुस्कराने लगी। बहुत बार पूछने पर बोली—"नहीं, उनसे तो मैं ही हार गई हूँ।"

आश्चर्य के कारण लेखा को हिचकियाँ आने लगीं, बोली—"तो आप उनसे..."

"हाँ लेखा, मैं उनसे प्रेम करने लगी हूँ।"

"और उस सेक्रेटरी बेचारे का क्या होगा ?" लेखा को दया आई।

"मैं क्या जानूँ ? उससे मुझे कभी प्रेम नहीं था।" अमिता ने कहा।

"लेकिन वह तो बेचारा, यही समझता था कि तुम उस पर मरती हो।"

"अब तुम समझा देना अच्छी तरह उसे।" अमिता ने व्यंग्य से कहा।

"अच्छा, मैं समझा दूँगी।" लेखा ने कहा—"लेकिन यह तो बताओ कि यह तुम्हारा आख़िरी रोमांस होगा, या इसके बाद भी और कोई ?"

"बको मत जी" अमिता ने शरारत से कहा—"इट इज़ फ़ाइनल, (यह अंतिम है)।"

लेखा ने संतोष प्रकट किया— 'तो ठीक है। लेकिन हाँ, तुमने अपने चित्रकार पर अपना यह प्रेम प्रकट कर दिया है या नहीं ?"

"अभी तो नहीं। लेकिन अब जल्द प्रकट कर दूँगी।"

"तो जल्दी करो; कहीं कोई 'एक्सिडेंट' न हो जाय।" लेखा बोली, और वहाँ से भाग गई। अमिता मुस्कराती रही।

और, जब अमिता ने अपना प्रेम कृष्णा पर प्रकट किया, तो वह सचमुच ही चौंक पड़ा। उसे यह आशा न थी कि बात इतनी शीघ्रता से हद तक पहुँच जायगी।

"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ", इन पाँच शब्दों ने उसके हृदय में उथल-पुथल मचा दी। अमिता उससे प्रेम करती है, किंतु वह तो उससे प्रेम नहीं करता, और न कर ही सकता है। फिर प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है।

कहने लगा—"करिए। ख़ूब करिए। करते रहिए। मुझसे कहने की क्या आवश्यकता थी ? यह तो आप मुझे सूचित किए बिना भी करती रह सकती थीं।"

अमिता तो समझी बैठी थी कि कृष्णा उसका प्रेम स्वीकार करने को उतावला होगा, लेकिन उसकी उखड़ी हुई बातें सुन वह चक्कर में पड़ गई।

कहने लगी—"सचमुच ही मुझे आपसे प्रेम हो गया है। मैं आपसे शादी करूँगी।"

कृष्ण ने देखा, यह तो गले पड़ती जा रही है। वह घबराया। पीछा छुड़ाने को और कोई युक्ति न देख उसने कड़ा साहस कर कहा—"हूँ, मुझे ताज्जुब हो रहा है। 'माडर्न गर्ल' (आधुनिक युवती) एक नवयुवक के साथ 'फ्लर्ट' कर सकती है, शादी नहीं। फिर आप किस प्रकार मुझसे शादी करने को तैयार हो रही हैं ?"

तीर ने अपना काम किया। अमिता सहमकर पीछे हटी। यह शख्स इतना जहरीला है, उसने सपने में भी यह नहीं विचारा था।

कृष्ण बढ़ता गया। अपने आप ही सुलझता हुआ कहने लगा—"ठीक भी है विवाह करना, मैं मानता हूँ। आप लोगों के लिये तो विवाह एक 'इंटरवल' (विश्राम-काल) है। जब चाहा, प्रेमियों के चुंबनों और गर्म श्वासों से अवकाश ग्रहण कर लिया। इसमें आप लोगों की हानि ही क्या होती है ? ऐयाशी की दुनिया में आप देती हैं, हम पाते हैं; किंतु शादी के संसार में पति यदि किसी प्रकार छीन-झपटकर कुछ पा भी ले, तो वह उसे बहुत दिनों तक अपने पास नहीं रख सकता।"

"मिस्टर नंदन, आप क्या कह रहे हैं ?" अमिता घबरा गई।

अनसुनी कर कृष्ण कहता ही गया—"मेरा खयाल है, स्त्री प्रेम करने की वस्तु ही नहीं है, फिर आप-जैसी आडंबर-

वाली ? आप जानती हैं, मैं स्त्री के प्रति कितनी कठोर धारणा रखता हूँ ? ......मेरे ख़याल से स्त्री पुरुष के लिये सब से भयानक खतरा है, और उससे बचने का सहज उपाय है, उसे 'प्रेगनेंट' (गर्भवती) कर देना।"

"बस, रहने दीजिए अपनी फ़िलॉसफ़ी। मैं न समझती थी कि कलाकार के रूप में तुम इतने शैतान हो। इंसानियत से गिरे हुए। अगर मुझे मालूम होता, तो मैं तुमसे बात तक न करती।" दुःख और क्षोभ के कारण उसकी आँखों में आँसू आ गए।

कृष्णा को भी दुःख हुआ, क्यों वह झूठमूठ इतना कठोर हो गया, किंतु प्रकट रूप में वह मौन ही रहा।

अमिता ने एक बार और उसकी ओर देखा, और उमड़े हुए आँसू अधिक देर तक रोक सकने के कारण वहाँ से चल पड़ी। कृष्णा बड़े ध्यान से उसे देखता रहा। उसके बाद उसने एक बड़ी गहरी साँस छोड़ी।

किंतु कृष्णा जानता था, अमिता 'टैंप्रेरेरेली' रूठी है। एक-दो दिन बाद, क्रोध शांत होने पर, वह फिर आ धमकेगी, और इस बार उससे पीछा छुड़ाना बहुत मुश्किल हो जायगा।

और, हुआ भी वही। चौथे रोज़ जब कृष्णा अपने घर के सामनेवाले परचूनी की दूकान में खड़ा था, उसने अमिता को उधर जाते हुए देखा। अमिता ने काफ़ी देर उसकी

प्रतीक्षा की। हताश होकर उसने ताँगा लौटवा लिया। तब कृष्ण दूकान से उतरकर अपने कमरे में घुसा।

कृष्ण सोचने लगा—इस प्रकार कब तक लुका-छिपौवल होगी? अमिता के उसके जीवन में प्रवेश कर जाने से उस पर और उसकी चित्रकला पर काफ़ी प्रभाव पड़ा था। वह अब चित्रकला को इतना अधिक समय और ध्यान न दे पाता था। चित्रकला की साधना के लिये उसे अमिता के ध्यान तक को छोड़ देना होगा। चित्रकला की साधना प्रेम-योग द्वारा नहीं, हठ-योग द्वारा पूर्ण होगी। इसके लिये उसे इस सब मोह-जाल को तोड़ किसी अज्ञात स्थान में भागना होगा। नहीं तो वह तबाह हो जायगा।

और उस रात, बिना किसी से कहे-सुने, कृष्ण ने वह शहर छोड़ दिया।

---

(७)

एक बड़े-से घूँट में चाय समाप्त कर कृष्णा ने प्याली नीचे रख दी। अब वह माथे पर बिखरे बालों को ऊपर करता हुआ 'स्टैंड' की ओर बढ़ा, और चित्र बनाने लगा।

कुछ समय बाद रायसाहब और सुधा ने कमरे में प्रवेश किया। कुछ भी आहट न होने के कारण कृष्णा को उनके आने का बिलकुल पता न चला। वह अपने ध्यान में मग्न था। उन्होंने भी उसे छेड़ना उचित न समझा। वह कृष्णा के पीछे खड़े होकर चुपचाप उसे चित्र बनाते हुए देखने लगे। उनके सामने ही स्वच्छ पट की कुछ रेखाएँ समुद्र की लहरों में परिवर्तित हो गईं। भयंकर तूफ़ान के कारण लहरें ऊपर आकाश तक उछल रही थीं। यद्यपि कृष्णा की तूलिका बार-बार लहरों पर ही घूम रही थी, तथापि प्रत्येक बार उनमें कुछ विशेषता पैदा होती जा रही थी। वे लहरें अधिक अशांत और विद्रोहिनी होती जा रही थीं।

थककर कृष्णा ने तूलिका नीचे रक्खी, और हाथ से माथे का पसीना पोंछा। पीछे की ओर मुड़ते ही उसने रायसाहब को सुधा के साथ खड़े हुए देखा। नमस्ते कर उसने पूछा—"जी, आप कब आए? बैठिए।"

नमस्ते का जवाब देते हुए रायसाहब बोले—"हमें आए हुए काफी टाइम हो गया। उस समय आप चित्र बनाने में मशगूल थे।"

कुर्सी पर से मैले कपड़े उठा, चारपाई पर रख कृष्णा ने कुर्सी रायसाहब के पास रख दी। स्टूल सुधा के पास रखता हुआ वह बोला—"क्षमा कीजिएगा। मुझे कुछ भी पता न चला।"

रायसाहब और सुधा बैठ गए। कृष्णा खड़ा ही रहा। कुछ देर बातचीत के बाद कृष्णा अपने बनाए हुए चित्र उन्हें दिखाने लगा। रायसाहब को वे चित्र बहुत पसंद आए, और उनसे भी अधिक पसंद आए सुधा को। वह तो उन पर मुग्ध हो गई थी।

'सारंगीवाला'-शीर्षक चित्र की ओर मुग्ध दृष्टि से देखते हुए सुधा रायसाहब से बोली—"पिताजी, यह तस्वीर मुझे बहुत पसंद आई है। इसे भी ले लीजिए।"

"अच्छा, इसे भी ले लेंगे।" फिर कृष्णा की ओर मुड़ वह बोले—"निस्संदेह मिस्टर कृष्णा, आप बहुत ऊँचे आर्टिस्ट हैं। आपकी कला बहुत निखरी हुई है। अभी संसार पर आपकी योग्यता प्रकट नहीं हुई है, लेकिन वह दिन अब ज्यादा दूर भी नहीं है, जब तमाम लोग इस छिपी हुई हस्ती को पहचान जायँगे।"

इतनी प्रशंसा सुनने पर भी कृष्णा के चेहरे में कुछ परिवर्तन

न हुआ । वह नम्रता-पूर्वक कहने लगा—"जी, आप तो मेरी अत्याधिक प्रशंसा कर रहे हैं। मैं इस योग्य नहीं हूँ। मैं तो एक मामूली-सा चित्रकार हूँ। कुछ शौक़ के कारण और कुछ अपनी जीविका के हेतु चित्र बनाया करता हूँ।"

"नहीं-नहीं, मिस्टर कृष्णा ! अपनी कला के संबध में आप स्वयं नहीं जानते । मेरी नजरों के सामने से बहुत-से चित्र गुज़रे हैं, लेकिन इतने भाव-पूर्ण और सुंदर चित्र मैंने पहले कभी नहीं देखे। मैं स्थानीय प्रदर्शनी में आपके चित्र अवश्य रखवाऊँगा। प्रदर्शनी जनवरी में होगी। इतने में आप एक-दो चित्र नए और बना डालिए।"

दोनो हाथ आपस में मलता हुआ कृष्णा बोला—"जी, बहुत अच्छा। आप तो मुझ पर बहुत नम्र हो रहे हैं।"

रायसाहब खड़े होते हुए बोले—"नहीं, यह मेरा कर्तव्य है। किसी भी महान् शक्ति को अंधकार से प्रकाश में लाने के लिये एक समझदार व्यक्ति कभी ढील न करेगा। और, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि प्रदर्शनी में आपके चित्र सर्वश्रेष्ठ रहेंगे, और पुरस्कृत किए जायँगे।" फिर घड़ी की ओर देखकर बोले—"अच्छा, तो अब हम चलेंगे। आप अपना चित्र जल्द पूरा कर डालिए, और घूमते हुए हम लोगों की तरफ़ भी आ जाया कीजिए। वह भी आप ही का घर है। हाँ, यह सुबहवाले चित्र की क़ीमत।" कहते-कहते राय-साहब ने एक चेक कृष्णा के हाथ में पकड़ा दिया, और 'सारंगी-

वाला' चित्र की ओर इशारा कर कहने लगे—"कल सुबह मंगल इसे ले जायगा।"

कृष्णा के मुख-मंडल पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। लेकिन यदि वह उस समय सुधा के चेहरे की ओर देखता, तो उसे पता चलता कि सुधा का सुंदर चेहरा प्रसन्नता की दीप्ति से चमक उठा है, जिससे उसका सौंदर्य और भी अधिक बढ़ गया है।

सहसा सुधा की दृष्टि कृष्णा की खूँटी पर पड़ गई। उसे बरबस हँसी आ गई। रायसाहब भी टूटी चप्पल खूँटी पर देख खिलखिला उठे। कृष्णा अत्यधिक लज्जित हो गया।

नमस्ते कर कृष्णा ने अपने अतिथियों को बिदा किया, किंतु जाते समय सुधा की अपनी ओर डाली हुई उस दृष्टि को वह टाल न सका। वह सोचने लगा, उस दृष्टि में क्या भाव निहित था? सहसा उसे मुट्ठी के चेक का ख़याल आया। उसने चेक खोलकर देखा—"पाँच सौ! एक चित्र के पाँच सौ!" वह सपना तो नहीं देख रहा है। उसे विश्वास न हुआ। वह ठठाकर हँस पड़ा। चेक मोड़, जेब में रख वह स्टैंड की ओर बढ़ा। पाँच मिनट बाद वह तमाम संसार की सुध-बुध भूल चित्र बनाने में मग्न था।

---

(८)

उस दिन के बाद कृष्णा और रायसाहब की मुलाक़ातें तेज़ी से बढ़ने लगीं। लगभग प्रतिदिन ही कृष्णा रायसाहब के यहाँ हो आता था। मंगल को साथ ले कभी सुधा भी कृष्णा के स्टूडियो में घूम आती थी। कृष्णा का कमरा अब पहले की भाँति अस्त-व्यस्त न रहने पाता था। प्रत्येक वस्तु क़रीने से अपनी जगह सजी रहती थी। कमरे को सजाने का कार्य सुधा ने अपने हाथों में ले रक्खा था, और कभी-कभी कृष्णा को चीज़ें बेतरतीबवार कर देने के कारण सुधा से मीठी-सी फटकार भी मिलती थी।

एक महीने के अंदर ही कृष्णा रायसाहब के उस छोटे-से परिवार का अत्यंत आवश्यक अंग बन गया। रायसाहब को कृष्णा की अनुपस्थिति बहुत खलने लग जाती थी, और सुधा को ?... यह मालूम नहीं।

एक दिन बातों-ही-बातों में रायसाहब ने कृष्णा से कहा—"अरे हाँ, कृष्णा, तुम सुधा को चित्रकारी क्यों नहीं सिखाते ? उसकी चित्रकारी सीखने की बहुत इच्छा है। और फिर, तुमसे अच्छा शिक्षक उसे मिलेगा भी कहाँ ?"

कृष्णा तुरंत बोला—"अजी, मैं इस योग्य कहाँ, जो सुधाजी

को चित्रकला सिखा सकूँ। यदि सुधाजी चित्रकारी सीखना ही चाहती हैं, तो मैं किसी अच्छे आर्टिस्ट का नाम 'सजेस्ट' कर सकता हूँ।"

चाय की ट्रे लेकर आती हुई सुधा ने कृष्णा की बात सुन ली। प्याले मेज़ पर रखती हुई वह बोली—"जी नहीं, यदि चित्रकारी सीखूँगी, तो आपसे ही, नहीं तो न सीखूँगी।"

रायसाहब ने चुटकी ली—"अब बोलो भाई! क्या कहते हो?"

कृष्णा कहने लगा—"यदि ऐसा ही प्रण है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। जो कुछ उल्टी-सीधी लकीरें खींचना मैं जानता हूँ, वही इन्हें बतला दूँगा। लेकिन हाँ, अभी मेरा वह चित्र तो पूरा ही नहीं हुआ। बस, ज़रा उसे पूरा हो जाने दीजिए, फिर मैं आपको काफ़ी टाइम दे सकूँगा। बेहतर हो, यदि इतने आप मेरे पास आकर देखें कि मैं चित्र कैसे बनाता हूँ। सिर्फ़ एक घंटा सुबह और एक घंटा शाम आ जाया कीजिए। कोई हर्ज तो न होगा?"

रायसाहब बोले—"हर्ज क्या होगा? यहाँ भी तो यह माया-सिरीज़ के उपन्यास पढ़ती रहती है।"

कृष्णा निश्चिंत होकर बोला—"तो ठीक है।"

उस दिन से कृष्णाजी का चित्रांकन-कार्य द्रुतगति से चलने लगा। सुधा युनिवर्सिटी के लेक्चरर की भाँति ठीक टाइम पर आ जाती और ठीक ही टाइम पर चली जाती।

उसने जब यह अनुभव किया कि बैठे-बैठे ऊब-सी जाती है, तो अपने ऊपर एक कार्य ले लिया। अब वह रंग की प्लेट अपने हाथ में ले, एक गुड़िया की भाँति चुपचाप कृष्णा के पास खड़ी होकर उसका चित्र बनाना देखती रहती थी। आरंभ में कृष्णा को इसमें आपत्ति हुई, किंतु सुधा का हठ देखकर वह चुप हो गया। साथ ही उसने भी यह अनुभव किया कि सुधा के इस पोज से उसे काफ़ी स्फूर्ति मिलने लग गई है।

चित्र समाप्ति पर था। तूफ़ानी समुद्र, आकाश को चूमने की चेष्टा करती हुई उसकी फेनिल लहरें, जो विकराल वेग से मुँह बाए, शोर मचाती हुई, इधर-उधर साँप की भाँति लहरा रही थीं। संघर्ष के कारण बालू का टूटता हुआ कगार, जो केवल 'छप-छप' की विवश ध्वनि के साथ उन प्रलयकारी लहरों की गोद में विलीन हो जाता। धारा बढ़ी जा रही थी, आगे, चिर-संचित आशा लिए, निरंतर, उद्दाम वेग से, न-जाने कहाँ। किंतु किनारे से जरा दूर था एक बूढ़ा, सूखा वृक्ष, निराश भाव से सिर झुकाए, विगत अतीत पर आँसू बहाता हुआ, कदाचित् अपन करुण अवसान की प्रतीक्षा में। कलाकार-हृदय की भाँति वह भी जर्जर था।

रायसाहब अवाक् रह गए। इतना भाव-पूर्ण चित्र शायद उन्होंने नहीं देखा था। अनायास कह उठे—"कृष्णा, यदि इस कला के साथ तुमने पश्चिम के किसी देश में जन्म लिया होता,

तो आज तुम्हारे देशवाले तुम-जैसे कलाकार पर गर्व करते। तुम्हारा सम्मान होता, आदर होता, और मिलता लोगों के हृदय में एक ऊँचा स्थान। तमाम अखबार तुम्हारे चित्र प्रकाशित करने और तुम्हारी प्रशंसा करने में ही अपना गौरव समझते। तुम संसार के सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों में गिने जाते। अन्य देशों में भी तुम्हारी कला का प्रचार होता।"

फिर कुछ ठहरकर कहने लगे—"लेकिन यह भारतवर्ष ही ऐसा अभागा देश है, जहाँ कला का कोई आदर नहीं, कलाकार की कोई प्रतिष्ठा नहीं। लोगों के हृदयों को हिला देनेवाला चित्रकार स्वयं अधपेट और कपड़ों के अभाव के कारण शीत में ठिठुरता रहे, और बड़े लोग गर्म कपड़ों से लदे, 'चाकलेट' खाते हुए उसके चित्रों को देखकर कहें—"ब्यूटीफुल, एक्सलेंट।"

वह फिर बोले—"किंतु कृष्णा, मैंने सोच लिया है, मैं तुम्हारे चित्रों का विज्ञापन करूँगा। लोगों को बतलाऊँगा कि उनके बीच में कितना मूल्यवान् हीरा छिपा हुआ है। तुम्हारी चमक के आगे उन्हें प्रभावित होना ही पड़ेगा। मैं तुम्हारे इस चित्र को प्रदर्शनी में रखवाऊँगा। नहीं-नहीं, तुम इनकार नहीं कर सकते। यह चित्र अवश्य ही प्रदर्शन के लिये जायगा।"

सुधा इस समय इतनी प्रसन्न हो रही थी, जैसे उसे कोई त्रिभुवन का राज्य देने जा रहा हो। लेकिन कृष्णा चुपचाप किसी सोच में सिर नीचा किए खड़ा था।

"हाँ, तुमने नाम क्या रक्खा है, इस चित्र का ?" रायसाहब ने प्रश्न किया।

"नाम ?" कृष्णा मुस्कराया, "नाम तो सुधादेवी बतलाएँगी।"

"मैं ?" सुधा चौंकी, "ना बाबा, मैं इस योग्य नहीं, मुझसे आप यह आशा क्यों करते हैं ?"

"आशा", कृष्णा ने दुहराया, "किंतु क्या आप मुझे निराश करेंगी ?"

"आश-निराश" सुधा भावुक स्वर में कहने लगी, "आश-निराश।" फिर एकदम जल्दी से बोली—"मेरे ख़याल से तो 'आशा-निराशा' नाम ठीक होगा।"

"बहुत सुंदर. 'आशा-निराशा' कितना सुंदर और 'फ़िट' नाम है, इस चित्र के लिये।" रायसाहब ने प्रसन्न होते हुए कहा।

सुधा की ओर देख कृष्णा मुस्कराता हुआ बोला—"आपने चित्र का यह उपयुक्त नाम मेरी आशा के अनुकूल ही बताया है। बहुत कुछ मैंने भी यही नाम सोचा था इस चित्र का।"

जाते समय सुधा कहने लगी—"कृष्णाजी, भूलिएगा मत। कल से मेरी 'पेंटिंग' की 'क्लासेज' शुरू हो जायँगी। आपने ही कहा था न। अब आपका यह चित्र भी पूरा हो गया है।"

"हाँ-हाँ", कृष्णा ने दोनों हाथ पतलून की जेब में डाले ही कहा—"कल से आप अवश्य ही चित्रकारी सीखना आरंभ कर दें।"

"तो कल किस समय आया जाय ?"

सिर खुजाते हुए कृष्णा ने बतलाया—"यही कोई ग्यारह बजे।" फिर एकदम बोला—"देखिए, ड्राइंग कॉपी, रबर और पेंसिल लाना न भूलिएगा। स्कूल में ये चीजें 'सप्लाई' नहीं की जातीं। ये सब विद्यार्थी को अपने घर से लाना होती हैं।"

सुधा मुस्कराने लगी।

ग्यारह बजने से दस मिनट पहले ही सुधा कृष्णा के मकान पर पहुँच गई। कृष्णा सिगरेट पीता हुआ किसी ध्यान में मग्न था, उसे देख उठ खड़ा हुआ, और सुधा के लिये कुरसी खींचकर स्वयं चारपाई पर बैठ गया। तब वह कहने लगा—"अच्छा, तो आप चित्र बनाना सीखने आई हैं। सामान सब है न साथ में? ठीक है।" उसके कहने का लहजा ऐसा था, मानो सुधा के लिये बिलकुल अपरिचित है, और सुधा उसके लिये।

सुधा को आश्चर्य हुआ। कृष्णा आज इतना गंभीर क्यों हो रहा है? वह आज इस प्रकार बातें क्यों कर रहा है, जैसे उनकी नई ही जान-पहचान हुई हो। उससे रहा न गया, पूछ बैठी—"क्यों, आज आप इतने गंभीर क्यों हैं? आपकी तबियत तो ठीक है?"

कृष्णा जैसे चौंक पड़ा, बोला—"मैं एक बात सोच रहा था—वह यह कि मैं आपके बँगले पर ही आपको चित्र बनाना सिखलाऊँ। आपका यहाँ आना और दिन-भर रहना कुछ ठीक-सा न होगा। आपको कष्ट भी होगा, इतनी दूर आना और जाना। कल से मैं आपके बँगले पर ही आ जाया करूँगा, और वहीं आपको कुछ बतला दिया करूँगा।"

"लेकिन कल तो आप कह रहे थे कि मुझे ही यहाँ आना होगा ?"

"हाँ, कल ऐसा कहा था, लेकिन आज नहीं। बात यह है कि पहले मेरा खयाल था कि मैं अपना नया चित्र भी बनाता रहूँगा और आपको भी सिखलाता रहूँगा, लेकिन अब मैंने सोचा है कि शीघ्र ही कोई चित्र आरंभ नहीं करूँगा। अब कुछ दिन आराम करूँगा, और आपको चित्रकारी सिखाऊँगा। उसके बाद देखा जायगा।"

"बहुत अच्छा।" सुधा ने कहा।

"लेकिन आज मैं चित्रकारी की शुरुआत तो कर दूँ। कॉपी लाओ जरा इधर। तुम्हें तुम्हारा पहला सबक़ बता दूँ।"

सुधा से कॉपी लेकर कृष्णा ने उसमें लाइनें खींचनी शुरू कर दीं। अगले दिन जब कृष्णा, अपने में ही खोया हुआ, सुधा के बँगले पर पहुँचा, तो उसे आश्चर्य भी हुआ, और हँसी भी आई। सुधा सारे सामान से लैस हो कुरसी पर गुमसुम बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। कृष्णा को देख उसने खड़े होकर मूक नमस्ते की, अर्थात् केवल हाथ-भर जोड़ दिए, और कृष्णा के बैठने पर स्वयं भी बैठ गई।

आज उसकी छवि ही निराली थी। काली, सफ़ेद बुँदकियों की साड़ी के कारण वह बहुत सुंदर और आकर्षक मालूम हो रही थी। कृष्णा ने विचार किया, वह इस आकर्षण की उपेक्षा कदाचित् न कर सकेगा।

कुछ होश में आ उसने सुधा से कॉपी दिखाने को कहा। सुधा का हाथ न-जाने क्यों काँप गया। कॉपी छूटकर नीचे गिर पड़ी। कृष्णा उसे उठाने को हाथ बढ़ानेवाला ही था कि नीले ब्लाउज़ से कसी एक गोरी, पतली, कोमल बाँह शीघ्र आगे बढ़ी, और कॉपी उठा कृष्णा को थमा दी। कृष्णा के माथे पर पसीना चू आया। उसकी साँस की गति तेज हो गई। झट रूमाल निकाल, पसीना पोंछ उसने अपने का संयत करने की चेष्टा की।

सुधा काँपते हाथों से टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचने लगी। कृष्णा निरंतर उसे देखता रहा। लज्जा की रक्तिम आभा में लिपटी वह कृष्णा के तृषित नेत्रों को एक विचित्र छवि का उन्माद और कांति की मदिरा पिला रही थी।

अब प्रतिदिन इसी प्रकार पढ़ाई होने लगी। दोनो मेज के आपने-सामने बैठे रहते। कृष्णा कुछ पढ़ता होता और, सुधा वे ही साँप की भाँति लकीरें खींचती होती। कभी-कभी सिर उठाकर कृष्णा देखता और बहकी हुई रेखाओं पर बरबस उसे मुस्कराहट आ जाती। हँसकर वह सिर झुका लेता, और उससे भी अधिक सिर झुक जाता सुधा का। एक मस्तानी सौरभ की लपेट, एक मधुर-सी सिहरन और वे मादक क्षण कृष्णा को अपने में खोने के लिये बाध्य कर देते। और, वह सब कुछ भूल न-जाने क्या-क्या सोचने लगता। तब वह वहाँ से उठ जाता, और बाहर खड़ा हो सिगरेट पीने

आशा निराशा

कुमारी सुधा

लगता। इससे सुधा को कुछ मुक्ति-सी मिलती। वह पूरी सामर्थ्य से अपना काम करने लगती, हालाँकि कृष्णा की अनुपस्थिति में कॉपी पर पेंसिल की अपेक्षा उसका रबर ही अधिक चलता था।

यह क्रम कई दिनों तक रहा। कुछ भी उन्नति न कर पाने के कारण सुधा का उत्साह दिन-प्रति दिन कम होता जा रहा था, किंतु कृष्णा ने अभी हिम्मत नहीं हारी थी। वह सुधा को बार-बार उत्साहित करता था, किंतु परिणाम सिफ़र था। सुधा एक लकीर भी सीधी न खींच सकती थी। एक दिन कृष्णा ने बिगड़े 'मूड' में कुछ खीजे स्वर में कह दिया—"लड़कियों के हाथ से क़लम-पेंसिल कभी नहीं चल सकता। उनके हाथों में तो सुई, बेलन और करछी ही काम कर सकती हैं।"

चित्र न बना सकने की अपनी असमर्थता के कारण सुधा ने रोना आरंभ कर दिया। कृष्णा इसके लिये बिलकुल तैयार न था। वह घबरा गया। हत-बुद्धि हो वह सोचने लगा कि अब क्या करे? तब सुधा का हाथ अपने हाथ में ले उसने बहुत नम्रता-पूर्वक कहा—"मुझे क्षमा कर दो सुधा! मुझसे भूल हुई। मुझे यह बात न कहनी चाहिए थी।"

सुधा की सिसकियाँ बंद न होती देख कृष्णा फिर बोला—"सुधादेवी, आप मुझे जो सजा देना चाहती हैं, दे लें, लेकिन ईश्वर के लिये यह रोना बंद कर दीजिए। मैं अपने इस असभ्य व्यवहार पर बहुत लज्जित हूँ।"

सुधा सुनकर शायद लजा गई। उसने कृष्णा के हाथों से अपने हाथ छुड़ाकर अपना मुँह ढक लिया।

कृष्णा ने पूछा—"तो आपने मुझे माफ़ कर दिया न ?"

कोई उत्तर न मिला, केवल सिसकियों की आवाज़ रुक-रुककर आती रही। कृष्णा अब बुरी तरह घबरा गया। लाख सोचने पर भी वह यह तय न कर पाया कि उसे क्या करना चाहिए। अंत में उसने यह विचारा कि इस समय कुशल इसी में है कि विदा माँग ली जाय।

एक साधारण-सी 'नमस्ते' कह वह खटखट करता हुआ कमरे के बाहर चला गया। सुधा ने तब दरवाज़े की ओर देखा, जहाँ से कृष्णा बाहर गया था, और मेज़ पर सिर रख रोने लगी।

रायसाहब शायद खिड़की से सब देख रहे थे। कुछ समझ उन्होंने सिर हिलाया। तो उनका सोचना ठीक था—कृष्णा और सुधा, और सुधा और कृष्णा......वह धीरे-धीरे सुधा के पास आए, और प्रेम-पूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। सुधा ने चौंककर सिर उठाया। 'पिताजी' उसने कहा, और खड़ी हो, रायसाहब की छाती पर सिर रख आँसू गिराने लगी।

रायसाहब के मुँह से यह निकला—"मैं सब समझता हूँ, बेटी ! अब बस करो। वह नाराज़ नहीं हैं।"

(१०)

धूप नीम तक आ गई थी, आठ बज चुके थे, लेकिन कृष्णाजी अभी चारपाई छोड़कर नहीं उठे थे। सहसा किसी ने दरवाजा खटखटाया। पहले तो कृष्णा टाल गया, लेकिन दूसरी दफ़ा खटखटाने पर उसे पूछना ही पड़ा—"कौन है ?"

कोई उत्तर नहीं मिला। कृष्णा करवट लेकर नई नींद की तैयारी करने लगा कि फिर खटखटाहट हुई। खीजकर वह चिल्लाया—"अरे, कौन है भाई ? नाम बताओ अपना।" किंतु किसी ने अपना नाम न बताया, और खटखटाहट बराबर जारी रक्खी।

भुनभुनाते हुए वह चारपाई से उठा। "सुबह-सुबह आ जाते हैं कमबख्त परेशान करने। किसी को सोने तक नहीं देते।" कहता हुआ वह दरवाजा खोलने आगे बढ़ा।

लेकिन उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि दरवाजे पर दूधवाले, धोबी या होटल के मालिक की जगह सुधा खड़ी है। सुधा—रायबहादुर बनारसीदास की इकलौती बेटी—अपनी सहज, स्वाभाविक, सरल श्री लिए, अपने स्वाभाविक गांभीर्य-सहित। सफ़ेद, सादी पोशाक में वह प्रातः-काल की देवी के समान प्रतीत हो रही थी। उसके नेत्रों से जैसे

व्यथा का सागर उमड़ा पड़ रहा था। सुधा का यह अपूर्व सौंदर्य कृष्णा की आँखों में आ समाया। वह ठगा-सा देखता रह गया।

कृष्णा को होश आया। एकदम बोला—"आइए, आइए। वह घर आएँ हमारे, खुदा की कुदरत है। कभी हम उनको, कभी अपने स्टूडियो को देखते हैं।"

सुधा ने कमरे में प्रवेश किया, जैसे कोई अभिनेत्री विंग से स्टेज पर आए, और चुपचाप खड़ी हो गई।

कृष्णा कुरसी लाया, और नजदीक रख बोला—"बैठिए।" लेकिन जब देखा कि सुधा खड़ी ही है, तो कंधे पकड़ बैठाते हुए कहने लगा—"अजी बैठिए भी। आप क्या अब तक नाराज़ हैं?", और मुस्करा पड़ा।

सुधा बैठ गई। कृष्णा के सिर से जैसे बोझ हटा। बोला—"चलिए, आप बैठीं तो।" फिर कहने लगा—"अच्छा, अब बताइए, आपकी क्या खातिर की जाय? जब हम आपके यहाँ जाते हैं, तो आप हमें चाय पिलाती हैं, लेकिन हम आपको आज क्या पिलाएँ? क्योंकि न तो हमारे पास तेल है, और न हमारे स्टूडियो में कोई चूल्हा है। अच्छा, आज मैं स्प्रिट जरूर खरीद लाऊँगा। इस वक्त तो नहीं, हाँ, आज शाम को मैं आपको चाय जरूर पिलाऊँगा। आप शाम को अवश्य आइएगा।"

सुधा तब भी कुछ न बोली। कृष्णा कुछ देर तक सुधा को

चेहरा देखता रहा, फिर सहसा कहने लगा—"आपका चेहरा इस समय फ़ोटो खींचने लायक़ हो रहा है। मैं बहुत दिनों से आपका चित्र बनाने की सोच रहा था, लेकिन ठीक पोज़ न मिलता था। आज अचानक ही पोज़ बन गया है। बस, आप इसी तरह बैठी रहें। यह हाथ ज़रा कुरसी के दस्ते पर टेक लें, और चेहरे पर ज़रा-सी मुस्कराहट ले आएँ— 'इक यूडोंट माइंड'। बस, इतनी से काम चल जायगा।"

और कृष्णा पट पर रेखा-चित्र बनाने में लग गया।

जिस समय कृष्णा ने सुधा को छुट्टी दी, और अपने आप भी खुलकर साँस ली, उस समय साढ़े ग्यारह बज रहे थे।

कृष्णा ने उस समय सुधा के साथ चलने में अपनी असमर्थता प्रकट की, किंतु सुधा से उसने शाम को चाय पीने के लिये आने का पक्का वायदा करा लिया।

उसके बाद वह बाजार जाकर नया टी-सेट, मिठाई, नमकीन, फल और न-जाने क्या-क्या ले आया। दिन-भर वह शाम की चाय का प्रबंध करता रहा।

पाँच बजे के लगभग सुधा आई। यह सब तैयारी देखी, तो विस्मय-पूर्वक हँसने लगी। उस समय कृष्णाजी हलुवा तैयार कर रहे थे। बोले—"ठीक टाइम पर आई हैं आप। सब चीज़ें तैयार हैं, सिर्फ़ हलुवा रह गया है। यह भी दो मिनट में तैयार हुआ जाता है।"

सुधा मुस्कराई। कृष्णा के पास आ उससे चम्मच लेती हुई

किंचित व्यंग्य-पूर्वक बोली—"आप ही तो कहते थे, ये चीजें औरतों के ही हाथ में सजती हैं। यह काम पुरुषों के करने के नहीं हैं, इन्हें हमारे लिये छोड़ दीजिए। आप इतने मेज पर प्याले सजाइए।"

कृष्णा चुपचाप खड़ा हुआ सुधा का चम्मच चलाना देखता रहा, फिर मानो अपने आपसे ही कहने लगा—"सच कहते हैं, घर की शोभा वास्तव में स्त्री से है। स्त्री के बिना घर और जीवन, दोनों ही ऊसर हैं।"

सुधा मुस्कराती हुई बोली—"तो बुलवा लीजिए न अपनी पत्नी साहबा को उनके मायके से?"

'पत्नी'...कृष्णा चौंका। केवल कह पाया—"नहीं।"

अब सुधा चौंकी। पत्नी को न बुलाने का क्या कारण होगा? उत्सुकता-पूर्वक पूछा—"क्यों?"

कुछ हिचकता हुआ कृष्णा बोला—"क्योंकि...क्योंकि पत्नी ही नहीं है।"

सुधा खिल उठी। अनजान की भाँति पूछा—"क्यों? क्या अभी तक आपने अपनी शादी नहीं की?"

"जी नहीं, यह गुनाह मैंने अभी तक नहीं किया है।" कृष्णा गंभीर हो बोला।

"आखिर क्यों?"

"क्योंकि एक तो मैं खूबसूरत नहीं हूँ," कृष्णा अपने सुंदर चेहरे पर हाथ फेरता हुआ बोला—"और दूसरे, मेरी आमदनी

इतनी नहीं है कि मैं अपने साथ अपनी बीबी का भी पेट पाल सकूँ।"

सुधा ख़ामोश रही। चाय पीते हुए कृष्णा ने फिर बात छेड़ी, कहने लगा—"लेकिन खाने-पीने की दिक़्क़तों से तंग आकर अब मैंने शादी कर लेने की ही सोची है। कोई लड़की अगर आपकी नजर में हो, तो बतलाइएगा।"

सुधा एक क्षण चुप रही, फिर पूछा—"कैसी लड़की पसंद करेंगे आप ? क्या-क्या गुण होने चाहिए उसमें ?"

कृष्णा झटपट बोला—"बिलकुल आप-जैसी।"

मारे शर्म और संकोच के सुधा सिंदूर हो उठी। कृष्णा के आगे बोलने की हिम्मत न हुई। बस, बात वहीं ख़त्म हो गई।

चाय पीकर जब सुधा चलने को तैयार हुई, तो कृष्णा कहने लगा—"चलिए, मैं आपको आपके बँगले तक छोड़ आऊँ।"

सुधा के साथ जब कृष्णा ने बँगले में प्रवेश किया, तो रायसाहब को जरा भी आश्चर्य न हुआ। वह फ़ौरन बोल उठे—"आओ कृष्णा, मैं तुम्हारा इंतजार ही कर रहा था। मैं जानता था, तुम अवश्य आओगे।" फिर सुधा से पूछने लगे—"कहो बेटी, आज की चाय कैसी रही ? चित्रकला की तरह कृष्णा को इस चाय-कला में भी 'मास्टरी' हासिल है या नहीं ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं।" सुधा ने फुर्ती से कहा—"ऐसा मालूम पड़ता है, जैसे इन्होंने बहुत दिन........"

"होटल में बैरे का काम भी किया है।" कृष्णा ने वाक्य पूरा किया। रायसाहब हँसते-हँसते गोल हो गए। सुधा को मुँह में रूमाल दबाना पड़ा, और कृष्णाजी गंभीर मुद्रा से सिगरेट सुलगाने की कोशिश करने लगे।

प्रदर्शनी के दिन निकट आ रहे थे, परंतु कृष्णा निश्चिन्त था। उसने मान लिया था कि वह प्रदर्शनी में अपना वही चित्र भेजेगा—'आशा-निराशा', और अपना भाग्य आज़माएगा। पुरस्कार की उसे चाहना न थी, नाम का वह इच्छुक न था, वह तो केवल लोगों की रुचि का अध्ययन करना चाहता था। देखना चाहता था कि लोग उसकी कृति पसंद करते हैं या नहीं ?

घर पर वह सुधा का चित्र पूरा कर रहा था। बहुधा वह रात-रात-भर जागकर अपना कार्य किया करता था। अपनी सुध-बुध भूल मेहनत करने के कारण वह काफ़ी कमजोर हो गया था। दाढ़ी बढ़ आई थी, और घुँघराले बाल रूखे-सूखे हो गए थे। कृष्णा जी-जान से चित्र के पीछे लगा हुआ था, लेकिन चित्र पूरा होने पर ही न आता था।

सुधा से उसकी बातचीत आजकल बहुत कम होती थी। सुधा रंग की प्लेट पकड़े चुपचाप खड़ी रहती थी, और कृष्णा की तूलिका दर्ज़ी की सुई की भाँति निरंतर चलती रहती थी। अथवा सुधा चाय की प्याली लिए खड़ी-खड़ी कृष्णा के चाय पी लेने की प्रतीक्षा किया करती थी। बहुधा चाय ठंडी हो

जाती थी, और सुधा को उसे दो-दो, तीन-तीन बार गर्म करना पड़ता था, या नई चाय बनानी पड़ती थी। परंतु न तो कृष्णा ही थकता था, और न सुधा ही।

एक दिन रायसाहब ने चित्र देखने के लिये कृष्णा के कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने स्टैंड पर देखा, वह चित्र था एक युवती का, स्वर्गीय सौंदर्य लिए हुए, जिसके पतले-पतले ओंठ तूलिका की कौतूहल-भरी उत्सुकता के कारण अधमुँदे रह गए थे, और उनमें से झाँक रहे थे दाँत के तीन-चार दाने। ठुड्डी के दाँई ओर था एक काला छोटा-सा तिल, जो उस सौंदर्य की प्रतिमा की शोभा को द्विगुणित कर रहा था।

रायसाहब चित्र देखकर बहुत प्रसन्न हुए, बोले—"वास्तव में चित्र बहुत सुंदर बना है। मेरी आशा से भी बढ़कर।" फिर पूछा—"अब तो यह जल्द ही पूरा हो जायगा ?"

"नहीं, अभी यह काफ़ी टाइम लेगा। अभी तो यह आधा भी नहीं बना है। चित्र की मुख्य वस्तु, यानी सुधादेवी की आँखें और उनमें निहित भावों के इस चित्र में झलकने में अभी काफ़ी समय लगेगा। इस चित्र को जितना ही अधिक तराशा जायगा, उतना ही अधिक यह सुंदर बनेगा।"

रायसाहब दूर खड़ी सुधा की ओर देखने लगे, मानो उसकी और चित्र की तुलना कर रहे हों।

एक दिन सुधा न आई। कृष्णा बहुत देर तक प्रतीक्षा करता रहा। जब निराश हो गया, तो झुँझलाकर उठा, और चित्र

बनाने की कोशिश करने लगा। तूलिका हाथ में लिए वह बहुत देर तक खड़ा सोचता रहा कि क्या बनाया जाय, लेकिन उसे कुछ भी न सूझ पड़ा। विवश हो दो-तीन बार तूलिका इधर-उधर घुमा उसने रंग की प्लेट रख दी, और तूलिका को कोने में फेंक दिया।

दिन-भर वह सिगरेट के धुआँ उड़ाता रहा, और संभव-असंभव कल्पनाएँ करता रहा।

उस रात भी वह चित्र न बना सका।

दूसरे दिन जब सुधा आई, कृष्णा दरवाजे की ओर पीठ फेर अन्यमनस्क भाव से खड़ा था। सुधा ने उसे नमस्ते की, किंतु कोई उत्तर न देख वह उसके निकट आई। कृष्णा ने एक मिनट तक सुधा को बड़े ध्यान से देखा, और आगे बढ़ उसे अपने बाहु-पाश में ले लिया। सुधा विस्मय से भर उठी, लेकिन उसने कोई विरोध नहीं किया, बल्कि वह स्वयं शिथिल हो कृष्णा की बाँहों में लिपट गई।

कृष्णा को तब कुछ ख़याल आया। उसे बंधन-मुक्त कर उसके दोनों कंधे पकड़ सभ्यता-पूर्वक हिलाते हुए उसने कहा—"सुनो सुधा रानी! मैं अब अधिक नहीं छिपा सकता। आज मैं तुमसे एक कठोर सत्य कहने जा रहा हूँ, जो अनायास ही मेरे अंतर से बाहर आ रहा है। सुनो, तुम्हीं मेरी प्रेरणा-शक्ति हो। तुम्हीं से मुझे चित्र बनाने की प्रेरणा मिलती है। मैंने देख लिया है कि मैं तुम्हारे बिना चित्र नहीं बना सकता। तुम्हारी अनुपस्थिति

में कोई भी शक्ति मुझसे चित्र नहीं बनवा सकती। जानती हो, कल मैं चित्र क्यों न बना सका?......क्योंकि कल तुम मेरे सामने न थीं। मैंने कई बार चित्र बनाने की कोशिश की, लेकिन असफल रहा। चित्र बनाने में जैसे कोई उत्साह ही न रहा था। मैंने अब सोच लिया है, मैं तुम्हारे सामने होने पर ही चित्र बनाया करूँगा, नहीं तो .....।" वह रुक गया।

सुधा आत्मविभोर हो जैसे किसी दूसरे ही लोक में विचरण करने लगी। कृष्णा के चुप होते ही उसने शीघ्र अपने को संयत कर लिया, और प्रसन्नता के भाव चेहरे पर न लाने की यथासाध्य कोशिश करते हुए अपने कंधे छुड़ा, कृष्णा पर एक बंकिम दृष्टि फेंक वह आगे बढ़ गई। कृष्णा निहाल हो गया।

प्रसंग बदलने के लिये सुधा ने पूछा—"यह चित्र आप अपने पास तो न रक्खेंगे, मुझे दे देंगे न ?"

कृष्णा सोचने लगा—अरे, चित्र अपने ही पास रखना होता, तो बनाता क्यों?......यह तो हृदय-पटल पर सुरक्षित रूप से मौजूद था। अपने से अलग करने के लिये ही तो इसे बनाया है। प्रत्यक्ष में बोला—"हाँ, अवश्य।"

दोनों चुप हो गए। कमरे में नीरवता छा गई, और काफ़ी लंबे समय तक रही।

उस असह्य मौन को तोड़ने के लिये पूछा—"कल आप आईं क्यों नहीं ?"

"ऐसे ही। सिर में दर्द हो गया था।"

"तो आज भी आराम करना था। ज़रा नौकर के हाथ खबर भिजवा देतीं, तो मैं स्वयं आ जाता।"

"पर आज तो तबियत बिल्कुल ठीक है। आप क्या आज चित्र न बनाएँगे। मैं तो तैयार हूँ।" सुधा ने कहा।

"अच्छा, बनाता हूँ।" कृष्ण बोला, और कोने से तूलिका उठा रंग घोलने लगा।

प्रदर्शनी के द्वार पर रायसाहब और कृष्णा खड़े हुए थे। लोग आ-जा रहे थे। काफ़ी भीड़ थी। मोटरों और ताँगों की एक लंबी क़तार लगी हुई थी। कृष्णा उदास, फीकी दृष्टि से चारों ओर देख रहा था, मानो उसे इस चहल-पहल में कोई रस न आ रहा हो। सुधा रायसाहब के दोस्त डॉ० कपिल के साथ अंदर गई हुई थी।

सहसा डॉ० कपिल, सुधा और एक सूटेड-बूटेड नवयुवक अंदर से रायसाहब के पास आए।

डॉ० कपिल ने लपाक से कहा—"रायसाहब, आप बहुत ख़ुश होंगे। मैं आपका परिचय मि० राजीव से कराना चाहता हूँ।" फिर नवयुवक के कंधे पर हाथ रखते हुए बोले—"आप हैं मि० राजीवलोचन बी० ए०, सुप्रसिद्ध चित्रकार। आपके दो चित्र 'मधु-पान' और 'साँझ की बेला' आपने प्रदर्शनी में अवश्य ही देखे होंगे। लोगों ने उन्हें बहुत पसंद किया है—उम्मीद है, फ़र्स्टप्राइज़ इन्हें ही मिलेगा। मैं इस सिलसिले में मि० राय से भी मिला था। वह भी तो 'एक्ज़ामिनिंग कमेटी' (परीक्षक-मंडल) में हैं। उन्होंने पूरा-पूरा विश्वास दिलाया है। आजकल आप बसंतपुर-स्टेट में रहते हैं, और भारतीय चित्रकला पर एक पुस्तक लिख रहे हैं।"

फिर राजीव की ओर मुड़कर बोले—"और आप हैं रायसाहब बनारसीदास—चित्रकला के प्रेमी और पारखी। आपका बँगला सुंदर चित्रों का 'म्यूजियम' कहा जा सकता है। यह हैं आपकी पुत्री—कुमारी सुधा, 'वर्दी डॉटर ऑफ़ वर्दी फ़ादर' (योग्य पिता की सुयोग्य कन्या)। आपको भी चित्रकारी से विशेष प्रेम है।"

"बहुत ख़ुशी हुई आपसे मिलकर।" कहता हुआ राजीव आगे बढ़ा। रायसाहब ने हँसते हुए उससे हाथ मिलाया, किंतु सुधा केवल नमस्कार कर ही रह गई। राजीव का बढ़ा हुआ हाथ वैसे ही रह गया। वह खिसिया-सा गया।

कृष्णा को यह कुछ बुरा-सा लगा, पर वह बोला कुछ नहीं, केवल राजीव की ओर देखता ही रहा।

राजीव ने प्रस्ताव रक्खा—"क्यों न प्रदर्शनी का एक चक्कर और लगा लिया जाय ?"

डॉ० कपिल ने समर्थन किया—"हाँ-हाँ।"

रायसाहब बोले—"चलिए फिर।"

कुछ सोच कृष्णा कहने लगा—"अब मैं चलूँगा, देर हो रही है।"

रायसाहब तुरंत बोले—"नहीं-नहीं, अभी ठहरो। हम भी चले चलते हैं, बस ज़रा एक चक्कर लगा लें।"

इच्छा होते हुए भी कृष्णा विरोध न कर सका। अनमना-सा उन लोगों के साथ चलने लगा।

राजीव ने सुधा से कहा—"यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि आपको भी चित्रों से दिलचस्पी है।" फिर प्रश्न किया—"आप मुझे अपने बनाए हुए चित्र दिखलाएँगी ?"

सुधा ने लज्जित-सी होकर उत्तर दिया—"माफ़ की जिए। मैं चित्र बनाना नहीं जानती।"

"क्या आपने सीखने की कोशिश नहीं की ?"

"नहीं, कोशिश की तो थी," सुधा ने कहा—"लेकिन मैं सीख ही न पाई।"

"आपको चित्रकारी सिखानेवाला कोई अनाड़ी रहा होगा, वर्ना यह कैसे मुमकिन था कि आप चित्र बनाना न सीख पाईं। लड़कियाँ तो लड़कों की अपेक्षा चित्र बनाना शीघ्र ही सीख जाती हैं। इस मामले में नेचर उनकी बहुत मदद करती है। उनकी उँगलियाँ पतली और लंबी होती हैं न !"

कृष्णा का चेहरा अपमान के कारण काला पड़ गया, लेकिन वह चुप रहा। सुधा काँप गई, उसे कृष्णा के चेहरे की ओर देखने का साहस तक न हुआ।

राजीव ने सुधा से फिर कहा—"अगर आपको कोई 'आबजेक्शन' (आपत्ति) न हो, तो मैं आपको चित्रकला सिखाने को तैयार हूँ। मैं सहर्ष आपको घंटे-दो घंटे का समय दे सकता हूँ, और दावे के साथ कहता हूँ कि एक महीने में ही आप इस कला में 'मास्टरी' हासिल कर लेंगी, और बढ़िया-से-बढ़िया चित्र बना सकेंगी।"

सुधा घबरा गई। रायसाहब उसकी स्थिति समझ गए। उन्होंने कृष्णा की ओर देखा। कृष्णा मुस्कराने लगा।

डॉ० कपिल बोले—"इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है। मैं कुमारी सुधा को इतना अच्छा शिक्षक पाने के लिये बधाई देता हूँ।"

फीके मुँह से सुधा ने कृष्णा की ओर देखा। कृष्णा हँसता हुआ बोला—"क्या आप हिचकिचा रही हैं सुधाजी? आपको तो फ़ौरन् हाँ कर लेना चाहिए। एक महान् कलाकार आपको चित्रकला सिखाने का प्रस्ताव रखता है, और आप सोचती हैं। फ़ौरन् हाँ कहिए।"

शायद राजीव के कानों को ये शब्द न भाए। भौं सिकोड़-कर रायसाहब से पूछा—"आपकी तारीफ़?"

"मैं तारीफ़ के क़ाबिल ही नहीं हूँ, फिर तारीफ़ कैसी?" कृष्णा ने उसी लहजे में उत्तर दिया।

"अच्छा जो," राजीव ने किंचित् व्यंग्य-पूर्वक कहा—"आप तो शायराना बातचीत करते हैं। शायद आप शायर ही हैं। माफ़ कीजिए। शायर होना कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन न-जाने क्यों मुझे इस शायरी और कविताबाज़ी से सख़्त नफ़रत है।"

कृष्णा ने कुछ ध्यान नहीं दिया, और दूसरी ओर देखने लगा। सहसा मुड़कर रायसाहब से कहने लगा—"अब तो चलिए। चक्कर भी पूरा हो गया है।"

रायसाहब जैसे नींद से जागे हों, चौंककर बोले—"हाँ भाई, अब चलेंगे। हम तो थक गए हैं।" फिर डॉ० कपिल और राजीव से बोले—"अच्छा साहब, नमस्ते। हाँ, देखिए, कल सुबह चाय पर आइए न।"

"अवश्य-अवश्य।" राजीव ने हाथ जोड़ते हुए कहा, और डॉ० कपिल के साथ आगे बढ़ गया।

"तुम भी आना कृष्णा!" रायसाहब कृष्णा से बोले।

"मैं शायद न आ सकूँगा, क्योंकि मैंने कल दस बजे सुबह तक सोने का प्रोग्राम बनाया है।" कृष्णा ने गंभीरता-पूर्वक कहा।

"अजीब आदमी हो।" रायसाहब हँसते हुए बोले—"अच्छा, तो शाम को आना, जरूर।"

रास्ते में और कोई बात न हुई। जब कृष्णा कार से उतरकर अपने मकानवाली गली में घुसने लगा, तो रायसाहब ने कहा—"सुनो कृष्णा, प्रदर्शनी में राजीव ने जो बातें कही थीं, उनका खयाल न करना, और न बुराही मानना। जो कुछ भी हो, राजीव तुम्हारी जोड़ का नहीं है, यह मैं स्पष्ट कह सकता हूँ।"

कृष्णा एक क्षण चुप रहकर बोला—"नहीं, सच बात का क्या बुरा मानना! जो सत्य है, वह तो है ही।" फिर कुछ रुककर बोला—"अब आप देर न कीजिए। काफी रात हो गई है। अच्छा, नमस्ते।"

और, वह मुड़ गया। रायसाहब देखते रह गए।

अंतिम बात कृष्णा ने कितनी पीड़ा-सहित कही थी, यह केवल सुधा ही अनुभव कर सकी।

---

(१३)

दूसरे दिन सोकर उठते ही सुधा को कृष्णा की स्लिप मिली, जिसमें केवल इतना लिखा था—"कृपया मि० राजीवलोचन से मेरे संबंध में कोई बात न कीजिएगा। उन्हें मेरा नाम तक न बताइएगा, मेरी यही बिनती है। इसके लिये अनेक-अनेक धन्यवाद।—कृष्णा।"

पढ़कर सुधा ने स्लिप रायसाहब के हाथ में रख दी। राय-साहब ने उसे पढ़ विचित्र मुँह बनाया, फिर अपना मंतव्य प्रकट किया—"बड़ा ही अजीब लड़का है।"

नियत समय पर राजीवलोचन पधारे। आते ही बोले—"मुझे अफ़सोस है, डॉ० कपिल न आ सके। हाँ, मैं अपने वायदे के मुताबिक़ हाज़िर हो ही गया हूँ।", और हँस पड़े।

सुधा ने इस हँसी में सहयोग नहीं दिया।

राजीव भी काफ़ी सुंदर था, लेकिन उसका शरीर कृष्णा की भाँति गठा हुआ न था। कपड़े वह भड़कीले पहनता था। आज भी उसने काफ़ी क़ीमती और आकर्षक सूट पहन रक्खा था। इसके अतिरिक्त वह स्नो और सेंट आदि का भी प्रयोग करता था—ऐसा उसके रूमाल से सुधा को भासित हो रहा था, जिसमें से सेंट की तेज़ लहरें उठ रही थीं।

चाय पीते-पीते सहसा राजीव को कुछ याद आया. फ़ौरन् पूछ बैठा—"कल रात आपके साथ जो महापुरुष थे, वह कौन हैं ? क्या मैं जान सकता हूँ ?"

"वह हमारे परिचितों में से हैं। अच्छे घराने का शरीफ़ लड़का है।" रायसाहब ने बात समाप्त कर देने की इच्छा से कहा।

"हज़रत का नाम क्या है ?"

"मि० नंदन।" सुधा ने बहुत फुर्ती से कहा, मानो इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये उसने कई दिन से तैयारी कर रक्खी थी।

राजीव बोला—"अजब सिड़ी-सा आदमी मालूम पड़ता था। वह रहता कहाँ है ? मैं उससे मिलना चाहता था। इस क़िस्म के अजीबोग़रीब आदमियों से 'इंटरव्यू' करने की मेरी बहुत इच्छा रहती है—यह भी मेरी एक 'हॉबी' है।"

"मि० नंदन रहते तो नज़दीक ही हैं, लेकिन वह बात बहुत कम करते हैं, और मुलाक़ात तो किसी से करते ही नहीं—यह उनकी 'हॉबी' है।"—सुधा ने चोट की।

राजीव चुप हो गया। उसने विषय बदला। कहने लगा—"डॉ० कपिल कह रहे थे, आपके यहाँ बहुत सुंदर-सुंदर चित्र हैं। क्या मैं उन्हें देख सकता हूँ ?"

रायसाहब और सुधा दोनो ने प्रसन्नता-पूर्वक अपनी सहमति प्रकट की। रायसाहब लाइब्रेरी में जाकर राजीव को चित्र दिखलाने लगे।

'आज का हिंदुस्थान' चित्र राजीव को भी पसंद आया, हालाँकि प्रकट रूप में उसने अपनी पसंदगी जाहिर नहीं की, केवल इतना ही पूछकर रह गया कि यह चित्र किसने बनाया है, और रायसाहब ने कहाँ से खरीदा है ?

रायसाहब और सुधा ने एक नकली कहानी गढ़कर सुना दी। 'सारंगीवाला' चित्र के सामने पहुँचकर सुधा कहने लगी—"यह भी उसी कलाकार की कृति है, जिसने 'आज का हिंदुस्थान' चित्र की रचना की है। आपको ये दोनो चित्र कैसे लगे ?"

नाक-भौं सिकोड़ राजीव ने उत्तर दिया—"चित्र के भाव अच्छे हैं, लेकिन नौसिखिया चित्रकार होने के कारण वह उन भावों को ठीक-ठीक उतार नहीं सका है। इस चित्रकार को अभी बहुत सीखना है। अभी इसका हाथ ठीक तरह जमा नहीं है।"

फिर कुछ देर रुककर बोला—"अगर मैं 'आज का हिंदुस्थान' चित्र बनाता, तो यक़ीनन् वह एक अमर कृति होती।"

सुधा ने देखा, राजीव में दंभ बहुत है। उसे तो राजीव के चित्र, जो प्रदर्शनी में थे, खिलवाड़-से जान पड़े थे।

उसने पूछा—"अपने चित्रों के अतिरिक्त प्रदर्शनी में आपको कौन-सा चित्र पसंद आया ?"

राजीव मुँह बिचकाकर कहने लगा—"इस साल अच्छे चित्र नहीं आए हैं प्रदर्शनी में। सभी चित्र मामूली-से हैं।

तब भी एक अज्ञात चित्रकार का 'आशा-निराशा' कुछ अच्छा है।"

सुधा को इतनी प्रसन्नता हुई, मानो वह चित्र उसी की कृति था।

विदा लेते समय राजीव ने सुधा से पूछा—"मिस सुधा, आप सिनेमा देखती हैं या नहीं ?"

"हाँ ऽऽ, कभी-कभी देख लेती हूँ, कोई अच्छा-सा फ़िल्म हो, तो।"

"तो आज शाम को चलिएगा ? डाइरेक्टर बरुआ का "अमीरी' है। बहुत तारीफ़ सुनी है।"

सुधा दुविधा में पड़ गई। राजीव के साथ जाय या न जाय ? उसने चाहा, इनकार कर दे। सहायता के लिये उसने रायसाहब की ओर देखा। उनके चेहरे पर स्वीकृति का भाव देख उसे तनिक विस्मय हुआ। किंतु जब उन्होंने "चले जाना बेटी !" कह दिया, तो उसने सिर हिलाकर कह दिया कि वह चलेगी।

"तैयार रहिएगा।" राजीव ने कहा—"मैं ठीक साढ़े पाँच बजे आ जाऊँगा। सवा छ से पिक्चर होती है।"

तब वह सुधा को नमस्ते कर और रायसाहब से हाथ मिला, खट-खट करता हुआ चला गया।

पौने छ के लगभग कृष्णा ने बँगले में प्रवेश किया। पोर्टिको में कार तैयार देख वह वहीं रुक गया। उसी समय मंगल उधर आया। कृष्णा ने उससे पूछा कि कार में कौन जा रहा है ?

मंगल ने बतलाया कि सुधा बीबी राजीव बाबू के साथ सिनेमा जा रही हैं।

कृष्णा को जैसे फ़ालिज मार गया, उल्टे पैरों वह लौट चला। मंगल "बैठिए तो बाबू !" कहता ही रह गया।

पाँच मिनट बाद सुधा और राजीव नीचे उतरे, और गाड़ी में बैठ सिनेमा की ओर उड़ चले।

सिनेमा देखते हुए कोई विशेष घटना न हुई, केवल एक बार राजीव ने सुधा का बायाँ हाथ पकड़ लिया, और ज़ोर से दबा, धीरे-धीरे छोड़ दिया। सुधा को यह बात नागवार ज़रूर गुज़री, लेकिन उसने ज़रा हटकर बैठने के अलावा कुछ न किया।

सहसा सुधा को ध्यान आया—कृष्णा ने शाम को आने को कहा था। वह आया होगा, लेकिन उसे राजीव के साथ गया देख न-जाने क्या विचार किया होगा?

वह बेचैन हो गई। फिर उसकी तबियत खेल में न लगी। वह मनाने लगी कि खेल शीघ्र समाप्त हो जाय।

बँगले पहुँचते ही उसने पूछा—"कृष्णा तो नहीं आए थे ?"

मंगल ने अपराधी के स्वर में कहा—"आए तो थे।"

सुधा धक्-सी रह गई। मंगल आगे बोला—"उस वक़्त आप तैयार हो रही थीं, बस वह फ़ौरन् लौट गए, बैठे तक नहीं। मैं पुकारता ही रह गया।"

सुधा ने कुछ तेज स्वर में कहा—"तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं ?", और सिसकती हुई बेडरूम में चली गई।

रायसाहब और मंगल के बहुत कहने पर भी उसने बेडरूम के किवाड़ नहीं खोले, और न खाना ही खाया।

उस रात वह करवटें ही बदलती रही।

कृष्णा भी चारपाई पर पड़ा करवटें लेता रहा। आखिर उठ बैठा, और लाइट जलाई। उसकी दृष्टि सुधा के अधूरे चित्र पर पड़ी। सुधा मुस्करा रही थी। कृष्णा ने सोचा, सुधा मुस्कराती हुई ही अच्छी लगती है। उसे सदैव मुस्कराते ही रहने देना चाहिए। जिस कार्य द्वारा सुधा प्रसन्न होती है, उसे करना ही उचित होगा। उसकी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है।

सुधा राजीव के सामने प्रसन्न रहती है—अच्छा है। वह अब सुधा और राजीव के बीच में आने का प्रयास न करेगा। वह शीघ्र ही इस शहर को छोड़कर कहीं बाहर चला जायगा। सुधा राजीव को ही मुबारक रहे। उसका सुधा का क्या मेल?

उसने घड़ी देखी। एक बज रहा था। न-जाने क्या सोच-कर उसने स्टोव जलाया, और चाय का पानी चढ़ा दिया। फिर वह कमरे के दरवाजे खोल कर बाहर निकल आया।

निस्तब्ध रात्रि थी, केवल कभी-कभी कुत्ते भौंक जाते थे। आकाश में चाँद न था, और तारे सहमे हुए थे।

न-जाने वह कितनी देर तक खड़ा आकाश की ओर ताकता हुआ सोचता रहा।

सहसा उसने कपड़ा जलने की गंध अनुभव की। उसने

पीछे मुड़कर देखा, कमरे में दुगना प्रकाश हो रहा था। घबराकर तेज़ी से वह कमरे की ओर लपका।

कमरे में घुसकर देखा, और देखता रह गया—स्टोव से पास पड़े हुए चीथड़े में आग लगी थी, और अखबारों से होती हुई चित्रों में सरक आई थी। उस समय चित्र सुलग रहे थे। फिर एकदम उस ओर झपट पड़ा, और हाथ-पैरों से आग बुझाने की कोशिश करने लगा।

सहसा खयाल आया—सुधा का चित्र—बस, फ़ौरन उधर कूदा, और किसी-न-किसी प्रकार उसे उठाकर कमरे के बाहर फेंक दिया। फिर अपना बिस्तर, चारपाई और कपड़ों का संदूक़ भी बाहर डाल दिया। तब निश्चित भाव से हाथ-पैरों द्वारा आग दबानी शुरू कर दी।

अधिक जलने का सामान न पा आग अपने आप ही बुझ गई। कृष्णा की इतने वर्षों की मिहनत—उसके चित्र—बिलकुल राख हो गए थे। केवल सुधा का चित्र बचा था।

कृष्णा की उँगलियाँ बुरी तरह जल गई थीं, और मुँह काफ़ी झुलस गया था। उसकी उँगलियों में असह्य पीड़ा हो रही थी।

दर्द से व्याकुल हो कृष्णा इधर-उधर टहलने लगा। पीड़ा कम न होती देख उसने पानी के लोटे में अपने दोनो हाथ डाल दिए, और घंटे-भर तक बैठा रहा।

सहसा उसे विचार आया—उसके हाथ जल गए हैं। अब

वह इस जीवन में कभी चित्र न बना सकेगा—कभी भी उसकी चित्रकला नष्ट हो गई। वह अब सुधा का चित्र भी पूरा न कर सकेगा—किसी भी प्रकार नहीं। चित्र अधूरा ही रह जायगा—उसके अरमानों की भाँति।

वह रो पड़ा।

तारों की मलिन छाया में कृष्णा बैठा रो रहा था।

तब वह उठा। क़मीज़ की आस्तीन से आँसू पोंछे। संदूक खोल, उसमें से बटुआ निकाल, अपनी जेब में रख वह अपने पड़ोसी के घर की ओर बढ़ा। अपने पड़ोसी को जगाकर बोला—"माफ़ करना भाई जग्गू, तुम्हें इतनी रात में तकलीफ़ दी है, लेकिन क्या करूँ, ज़रूरत आ पड़ी। देखो, तुम मेरा सामान अपने पास रख लो। मैं कहीं बाहर जा रहा हूँ।"

जग्गू अवाक् उसके मुँह की ओर ताकता रह गया। कृष्णा उसे अपने साथ ले गया, और अपना सामान उसके सिपुर्द कर दिया। सुधा का अधूरा चित्र देते हुए उसने कहा—"यह तस्वीर सुधा को दे देना। सुधा को तुम पहचानते हो न ? वही लड़की, जो यहाँ यह तस्वीर बनवाने आती थी।"

जग्गू ने सिर हिलाया, फिर पूछा—"बाबू, कब तक लौटोगे ?"

"जब तक़दीर लौटा लाएगी।"—कृष्णा ने बड़े दर्द से कहा।

तब उसने विचारा—इस जीवन में वह अब सुधा को मुँह

नहीं दिखलाएगा—कभी नहीं। पहले वह चित्रकार के नाते उसके पास जाता था, किंतु अब तो वह चित्रकार नहीं रहा है। अब वह कौन-सा मुँह लेकर सुधा के सामने जाय? क्या यही जला मुँह लेकर?......नहीं......कभी नहीं....... कभी भी नहीं।

वह कमरे में आया। सहसा उसकी दृष्टि दीवार पर पड़ी, जहाँ लिखा हुआ था—"भावना से कर्तव्य ऊँचा है।" उसका विरोध जाग उठा। "ग़लत" वह चिल्लाया—"बिल्कुल ग़लत", और नीचे से कोयले का एक टुकड़ा उठा, उसी के नीचे मोटे-मोटे हरफ़ों में लिखने लगा—"नहीं, कर्तव्य ही सबसे ऊँची भावना है।" उसकी उँगलियों में दर्द होने लगा। वह तब बाहर निकल आया।

हसरत-भरी निगाह से कमरे को देखता हुआ वह स्टेशन की ओर चल पड़ा, जिससे शीघ्र ही अपने को इस शहर से और सुधा से दूर—बहुत दूर कर सके।

सुबह ही सुधा कृष्णा के मकान पर पहुँची। खुले हुए दरवाज़े देख वह काँप उठी। जल्दी-जल्दी कमरे में घुसकर देखा, कमरा बिलकुल ख़ाली था। केवल ज़मीन पर कुछ राख और अधजली चीज़ें पड़ी थीं, तथा दीवार पर टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा हुआ था—"नहीं, कर्तव्य ही सबसे ऊँची भावना है।"

एक अज्ञात आशंका से वह सिहर उठी। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे खड़ी न रह सकेगी। दरवाज़े का सहारा लेकर बाहर आई। देखा, एक आदमी खड़ा है। उसे देखते ही पूछने लगा —"आप ही का नाम सुधादेवी है न ?"

सुधा ने सिर हिलाया—गहरी आशा-सहित।

वह बोला—"तो ठहरिए। कृष्णा बाबू आपकी तस्वीर दे गए हैं। मैं अभी लाता हूँ।"

सुधा ने व्याकुल हो पूछा —"लेकिन वह कहाँ गए हैं ?"

जाते-जाते उसने उत्तर दिया—"मुझे नहीं मालूम। उन्होंने बताया ही नहीं।"

थोड़ी देर बाद वह चित्र लेकर आया, और सुधा को दे दिया। सुधा ने देखा, वही अधूरा चित्र था। उसने प्रश्न किया—"और तो कुछ नहीं कहा ?"

"नहीं।" जग्गू ने सिर हिलाया। धीरे-धीरे वह चला गया। सुधा खड़ी रही, लुटी हुई-सी।

उसने चित्र देखना शुरू किया, बिना पलक झपके—यहाँ तक कि उसकी आँखों में आँसू आ गए। फिर चित्र छाती से सटाए चल पड़ी।

सुधा को इतनी जल्दी लौटता देख रायसाहब ने सविस्मय पूछा—"अरे, इतनी जल्दी कैसे लौट आईं?"

"कृष्णा घर पर नहीं हैं। वह शहर छोड़ बाहर चले गए हैं।"—सुधा ने भरे हुए स्वर से कहा।

"क्या कहा? शहर छोड़कर चला गया?"—रायसाहब के आश्चर्य का वारापार न रहा।

"........................"

"बिना कुछ कहे-सुने? हमें भी नहीं बतलाया? हम कोई उसके लिये पराए थे?......बड़ा ही अजीब आदमी है!"

"........................"

"और यह क्या है?"

"वही, मेरा अधूरा चित्र। अपने पड़ोसी से मुझे देने के लिये कह गए थे।"—सुधा ने रुक-रुककर कहा।

"अच्छा, ठहरो, मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ।" कह-कर रायसाहब कमरे के बाहर चले गए।

सुधा कटे हुए वृक्ष की भाँति सोफ़े पर गिर पड़ी, और आँसुओं से अपना आँचल भिगोने लगी।

सुधा को बहुत अनमनी देख राजीव ने उससे कॉपी लाने को कहा। कॉपी ले आने पर राजीव उसे चित्र बनाना सिखलाने लगा। जाते समय राजीव उसे काफ़ी काम करने के लिये दे गया।

दूसरे दिन राजीव आया। पिछला काम देखा। कुछ नई बातें बतलाईं, घर पर करने के वास्ते कुछ और काम दिया, और चला गया।

इसी तरह तीसरे दिन, भी आया, और फिर तो रोज़ ही आने लगा। वह आता, डेढ़-दो घंटे के लगभग बैठता। सुधा को चित्र बनाना सिखलाता और केवल चित्र-कला के संबंध में ही बातें करता। फिर चाय आदि पीकर बिदा ले लेता।

सुधा ने अब अपने को काफ़ी सँभाल लिया था। वह बहुत ही गंभीर रहने लग गई थी। उसकी पहले की चंचलता और हँसी न-जाने कहाँ लोप हो गई थी।

रायसाहब ने कृष्ण का पता लगाने की बहुत कोशिशें कीं, लेकिन अंत में निराश हो चुप बैठ रहे। यह अब केवल कृष्णा के पत्र की ही प्रतीक्षा किया करते थे।

सुधा उसे व्यर्थ समझती थी। उसका विश्वास था, कृष्णा कभी पत्र नहीं भेज सकता। वह तो हमसे सदैव के लिये रूठकर चला गया है।

इधर राजीव धीरे-धीरे कृष्णा का स्थान लेता जा रहा था। एक दिन, पार्क से लौटते हुए, उसने सुधा का हाथ चूम लिया। सुधा ने कुछ भी विरोध न किया, लेकिन बाद में वह सिहर उठी।

मनुष्य दुख में सहानुभूति और समवेदना चाहता है। इसी सहानुभूति के मरहम का प्रयोग कर राजीव ने सुधा के दग्ध हृदय को थोड़ी राहत पहुँचाई, और सुधा के हृदय में भी थोड़ा-सा स्थान पा लिया।

रायसाहब सुधा के विवाह की चिंता से उदासीन थे। वह सुधा के इच्छा-विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करते थे, और इसीलिये सुधा को इस संबंध में उन्होंने पूरी स्वतंत्रता दे रक्खी थी। उन्हें सुधा पर पूरा-पूरा विश्वास था।

एक दिन बातों-ही-बातों में डॉ० कपिल ने कहा—"राजीव और सुधा की जोड़ी कितनी भली लगती है। आप सुधा का, विवाह राजीव से कर दीजिए न। राजीव हर तरह से सुधा के योग्य है।"

रायसाहब चौंक पड़े—यदि इस बीच कृष्णा आ गया तो ?.....वह जानते थे, सुधा अभी तक कृष्णा को पूरी तरह न भूल पाई थी। वह भी तो कृष्णा की कला और विनय-

शीलता पर मुग्ध थे। क्या कृष्णा का इंतज़ार न करना उसके प्रति अन्याय न होगा ? बोले—"हाँ, जोड़ी बहुत अच्छी है, लेकिन अभी जल्दी ही क्या है ?"

डॉ० कपिल चुप हो गए।

(१७)

अपना अधूरा चित्र राजीव के सामने रख सुधा ने उसे पूरा कर देने की प्रार्थना की।

पहले तो राजीव चकित हो चित्र को देखता ही रह गया। उसके मुँह से निकल पड़ा—"बहुत सुंदर।" फिर बोला—"मैं इसे पूरा करने की कोशिश करूँगा।"

उसने बहुत प्रार्थना की कि सुधा उस चित्र के बनानेवाले के विषय में कुछ बतला दे, लेकिन सुधा ने बराबर यही कहा कि मैं कुछ नहीं जानती, पिताजी जानते हैं।

लगभग एक सप्ताह बाद राजीव उस चित्र को जैसे-का-तैसा ही लौटा लाया। कुछ लज्जित-सा होकर कहने लगा—"मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन कुछ भी न कर सका। यह सूझा ही नहीं कि आगे क्या बनाया जाय? पता नहीं, चित्रकार चेहरे पर कौन-से भाव लाना चाहता था? उन भावों के संबंध में जानना बहुत कठिन है।...... यह चित्र तो वही चित्रकार पूरा कर सकता है, जो इसे अधूरा छोड़ गया है। आप उसी से इसे पूरा करा लीजिए। चित्र पूरा हो जायगा।"

"चित्र कभी पूरा नहीं हो सकता।" कहती हुई सुधा अपने

आँसुओं को रोकने में असमर्थ हो तेजी से बाहर चली गई।

राजीव भौचक खड़ा रह गया। वह सुधा को समझने में सर्वथा असफल रहा था। सुधा उसके लिये अभी तक, पहले दिन की भाँति ही, रहस्यमयी थी।

एक दिन बातों-ही-बातों में राजीव ने पूछा—"अरे हाँ, वह आपके मिस्टर नंदन कहाँ हैं आजकल? उस दिन के बाद कभी दिखाई ही नहीं पड़े? यहाँ आना-जाना क्यों बंद कर दिया उन्होंने? क्या बहुत 'बिजी' रहते हैं?"

सुधा का रंग फक हो गया, लेकिन राजीव के उसकी ओर देखने से पहले ही वह संयत स्वर में बोली—"नहीं, वह आजकल यहाँ नहीं हैं। कहीं बाहर गए हुए हैं।"

"तभी!" राजीव ने कहा—"उनसे बातें करने की बहुत इच्छा है मुझे। बड़े मजेदार आदमी हैं वह।"

सुधा दूसरी ओर देखने लगी।

कृष्णा को गए सवा महीने के लगभग हो चुका था। एक शाम राजीव अत्यंत उदास हो रायसाहब के यहाँ आया।

बैठने के बाद कहने लगा—"अच्छा, अब बिदा दीजिए। मुझे आप लोगों से अलग होना पड़ रहा है।"

सुधा ने घबराकर पूछा—"क्यों? क्या बात हो गई?"

राजीव बोला—"बात तो कुछ नहीं हुई। लेकिन यहाँ अब मेरा काम खतम हो गया है। आपको तो मालूम हो गया

होगा—"प्रदर्शनी में मेरा चित्र फर्स्ट नहीं आया, थर्ड आया है। मैं यहाँ चित्रों के निर्णय के इंतजार में ही था। बस, अब बसंतपुर चलूँगा।"

"फर्स्ट कौन-सा चित्र आया है?" सुधा ने आतुर कंठ से पूछा।

"वही 'आशा-निराशा'। कोई मि० कृष्णा हैं, उन्हीं का बनाया हुआ है।"

मारे खुशी के सुधा का चेहरा लाल हो उठा, लेकिन सहसा कृष्णा का ध्यान आ जाने के कारण वह एकदम उदास हो गई।

राजीव समझा, सुधा उसके जाने के विषय में सुनकर उदास हो गई है। उसे बहुत प्रसन्नता हुई। सुधा का हाथ अपने हाथ में लेकर वह बोला—"हम लोग फिर शीघ्र ही मिलेंगे। आशा है, इतने तुम मेरे प्रति कुछ और दयालु हो जाओगी।"

इसके बाद वह रायसाहब से बातें कर, सुधा से बराबर पत्र लिखते रहने का वायदा कर, बिदा हुआ।

रायसाहब आए, कहने लगे—"देखा सुधा, तुमने। अपने कृष्णा को इस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार बतलाया गया है। अब कल से ही बधाइयों के तार, पत्र और तस्वीरों के बड़े-बड़े ऑफर आने शुरू हो जायँगे। अखबारों में उसकी तस्वीरें छपेंगी, और उसका नाम फैलेगा।" फिर व्यथित स्वर में बोले—"लेकिन जिसके लिये यह सब होगा, वह बेचारा इस समय न-जाने कहाँ-कहाँ भटक रहा होगा?"

सुधा की आँखों में आँसू आ गए। उसका मस्तिष्क उस समय सोच रहा था—'कृष्णा कहाँ होगा ?...मेरा कृष्णा कहाँ होगा ?........"

लखनऊ..... कानपुर....., बनारस...... पटना.....
और पुरी.....। आजकल कृष्णा पुरी में था।

कुछ दिन हस्पताल में रहने के बाद से वह निरंतर घूम रहा था। उसके हाथ के ज़ख़्म भर चुके थे, लेकिन हाथ बेकार हो गए थे। उनसे वह कुछ भी काम न कर पाता था. यहाँ तक कि खाना भी बहुत कठिनता से खाता।

उँगलियाँ कुरूप हो मुड़ गई और निर्जीव हो गई थीं। भद्दी और असमर्थ उँगलियों को देख अक्सर उसका हृदय भर आता, और वह कठिनता से अपनी रुलाई रोक पाता।

बहुधा वह सुधा के विषय में सोचा करता। कभी विचार आता, इस डेढ़ महीने के अंदर राजीव के साथ उसकी शादी हो चुकी होगी। फिर सोचता, यदि शादी नहीं, तो सगाई तो हो ही गई होगी। कभी ख़याल करता, सुधा रोती हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी, और भगवान् से मना रही होगी कि कृष्णा शीघ्र-से-शीघ्र लौट आए। और, बाद में अपने इन मूर्खता-पूर्ण विचारों पर स्वयं हँसता।

उसके रुपए धीरे-धीरे ख़त्म हो रहे थे, और भविष्य की समस्या विकराल रूप से मुँह फाड़े सामने आ रही थी।

इसी बीच उसने पत्र में पढ़ा, उसका चित्र 'आशा-

निराशा' सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है, और उसे खरीदने के लिये किसी रिटायर्ड जज का दो हज़ार रुपए का ऑफ़र भी आ चुका है।

अचानक वह ठठाकर हँस पड़ा। जिसके चित्र के लिये दो हज़ार का 'ऑफ़र' आया हो, वह एक मामूली होटल में बैठ मिट्टी के कुल्हड़ में चाय पिए—यह हँसने की नहीं, तो क्या रोने की बात है?......

वह सोचने लगा—अब चित्र के नाम में संशोधन होना चाहिए। उस समय वह शीर्षक ठीक था, लेकिन अब नहीं। 'आशा-निराशा' की जगह अब उसका नाम केवल 'निराशा' रहना चाहिए। 'निराशा' भी नहीं, बल्कि 'घोर निराशा'। यही शीर्षक उस चित्र के लिये उपयुक्त है।

सहसा उसने देखा, संपादकीय वक्तव्य में लिखा हुआ था—"हमें 'आशा-निराशा' के उदीयमान चित्रकार से बहुत आशाएँ हैं।"

"आशा,"...उसने दाँत पीसते हुए कहा—"आशा तो करना ही बेकार है, जब वह पूरी नहीं होती।"

आवेश में उसने अखबार तोड़-मोड़कर एक कोने में फेंक दिया, और सिगरेट सुलगा धुआँ उड़ाने लगा।

इस प्रकार सिगरेट के धुएँ के साथ दिल के अरमान निकलते रहे, और उम्र की घड़ियाँ कटती रहीं।

---

(१६)

सुधा का तार पा राजीव विस्मय में पड़ गया। लिखा था—"पिताजी बीमार हैं। शीघ्र आओ।" और, राजीव अगली गाड़ी से रवाना हो गया।

पहुँचकर देखा, सुधा उसकी प्रतीक्षा में थी। बोली—"आप आ गए, यह बहुत अच्छा हुआ। अब तो पिताजी की तबियत कुछ सुधरी हुई है। शुरू में तो हालत बहुत खराब हो गई थी। मैं अकेली थी, और इसी कारण आपको तार किया था।"

राजीव ने कहा—"शुक्र है ख़ुदा का। तुमने मुझे इतना तो अपना समझा। मैं तुम्हारे कुछ तो काम आ सकूँगा।" फिर बोला—"अच्छा, रायसाहब से मिल लें।"

राजीव को देख रायसाहब बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे—"तुमने आने का कष्ट किया, इससे मुझे बहुत ख़ुशी हुई। सुधा तो बहुत घबरा गई थी।"

डॉ० कपिल तत्काल बोल पड़े—"ऐसे समय यदि अपना ही आदमी काम न आया, तो कौन आएगा?"

रायसाहब मानो कृतज्ञता के बोझ से दब गए।

एक सप्ताह के अंदर ही रायसाहब स्वस्थ हो गए। अब वह अच्छी तरह चल-फिर सकते थे। तभी डॉ० कपिल ने उन्हें

वायु-परिवर्तन की सलाह दी, और कहा—"इससे आपकी कमज़ोरी दूर हो जायगी, और शरीर में नई स्फूर्ति और नया बल आएगा।"

वायु-परिवर्तन की बात सुधा और राजीव को भी पसंद आई। फिर क्या था, प्रोग्राम बनने लगे। राजीव ने वसंतपुर चलने का प्रस्ताव रक्खा, जो डॉ० कपिल के कारण स्वीकार कर लिया गया।

दूसरे ही दिन राजीव, सुधा, रायसाहब और मंगल वसंत-पुर के लिये रवाना हो गए।

वसंतपुर रायसाहब को बहुत पसंद आया। उसका एक कारण भी था। वहाँ राजीव के चाचा से उन्होंने शतरंज सीख ली। दिन-भर सुधा और राजीव इधर-उधर घूमते और रायसाहब राजीव के चाचा के साथ बैठकर सल्तनतें जीतते और लुटाते।

राजीव के साथ सुधा वसंतपुर घूम चुकी थी। उसे तो वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य में कोई विशेष बात न दिखाई दी। शीघ्र ही वसंतपुर के प्रति उसका आकर्षण समाप्त होने लगा। वह कहने लगी कि उन्हें यहाँ आए पंद्रह दिन हो चुके हैं, अब उन्हें यहाँ से चलना चाहिए। राजीव ने यह सुना और उदास हो गया। वह अभी तक अपने उद्देश्य में सफल न हुआ था।

उस दिन डॉ० कपिल का पत्र आया। उन्होंने सलाह दी

थी कि रायसाहब को कुछ दिन समुद्र के निकट भी रहना चाहिए। राजीव चट बोला—"पुरी यहाँ से नजदीक है। वहाँ का जल-वायु बहुत अच्छा है, और शहर भी देखने लायक़ है। क्यों न वहाँ चला जाय?" इस बात का जोरों से समर्थन किया मंगल ने, जो जगन्नाथजी के दर्शन कर शायद स्वर्ग में अपनी एक सीट 'रिज़र्व' कराना चाहता था।

निदान पुरी जाने की बात तय रही।

समुद्र के किनारे एक छोटा-सा बँगला किराए पर लिया गया, और उसी में इन लोगों ने डेरा डाला।

राजीव अपना चित्र बनाने का सामान ले आया था, हालाँकि वह न तो कोई नया चित्र बना रहा था और न कोई चित्र पूरा ही कर रहा था।

राजीव और सुधा प्रायः घर पर ही रहा करते थे, और रायसाहब और मंगल मंदिरों के दर्शन करते रहते थे।

सुधा का नशा दिन-प्रतिदिन राजीव पर तेजी से चढ़ता जा रहा था। एक शाम, जब वे दोनो बालू पर बैठे हुए थे, राजीव ने अचानक उसे अपने अंक-पाश में कस लिया, और बोला—"अब तो नहीं सहा जाता सुधा! दुनिया में प्रत्येक वस्तु की सीमा होती है, परंतु तुम्हारी निष्ठुरता की कोई सीमा नहीं। क्या तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती? इतने दिन इसी आशा में बिता दिए कि एक-न-एक दिन तुम जरूर पिघलोगी, लेकिन दिखाई पड़ता है कि आशा कभी पूरी नहीं ह सकती।.....मैं तुमसे प्रेम करता हूँ सुधा! मैं तुम्हारे बिना एक दिन भी नहीं जी सकता। क्या तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है?... बोलो...। मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ सुधा! आशा है, तुम्हें इनकार न होगा?"

सुधा ने कोई उत्तर न दिया। काँपते हुए उसने अपने को राजीव के अंक-पाश से हटाया, और राजीव को ऐसी आँखों से देखने लगी, मानो उसे पहचानती ही न हो। इसके बाद वह एकदम बँगले की ओर दौड़ पड़ी। राजीव खिन्न-मन, सिर झुकाए बैठा रहा।

दो रोज़ तक दोनो में कोई बातचीत न हुई। दोनो एक दूसरे की ओर देखते और सहसा लज्जित हो अपनी दृष्टि फेर लेते। एक-दो बार वे आमने-सामने भी आए, लेकिन राजीव कतराकर एक ओर को निकल गया।

न-जाने क्यों राजीव सुधा के सामने अपने को अपराधी समझने लग गया था, और यह बहुत कुछ ठीक भी था। सुधा को राजीव के उस दिन के व्यवहार पर बहुत आश्चर्य हुआ। अपने घर वसंतपर में तो वह इतना विवेक-हीन कभी न हुआ था।

तीसरे दिन बाज़ार से लौट राजीव ने कहा—"आज एक मज़ेदार बात हुई।" अख़बार से दृष्टि हटा रायसाहब ने और स्वेटर से दृष्टि हटा सुधा ने उसकी ओर देखा। राजीव कहने लगा—"अभी मुझे बाज़ार में वही हज़रत मिले थे, सिगरेट लेते हुए, जो उस रात प्रदर्शनी में आप लोगों के साथ थे, और शायर-जैसे जँच रहे थे। उनका नाम शायद आपने न...नंदन बताया था।"

रायसाहब और सुधा दोनो चौंक पड़े, मानो बिजली का

'करेंट' उन्हें छू गया हो, किंतु शीघ्र ही सुधा ऐसी हो गई, जैसे उसमें बिलकुल शक्ति न रह गई हो।

राजीव ने ध्यान-पूर्वक देखा, और मुस्कराने लगा। तभी रायसाहब ने पूछा—'कृष्णा पुरी में है आजकल ? क्या करता है वह ?.. ....हाँ, तुम्हें कहाँ मिला था ?"

"कृष्णा ?" राजीव चौंका—"आपने तो उसका नाम नंदन बतलाया था।" "हाँ-हाँ।" रायसाहब बोले—"उसे नंदन भी कहते हैं। लेकिन वह तुम्हें कहाँ मिला था ?"

"बाजार में। पान की दूकान पर खड़ा था। मुझे एकदम पहचान गया, पूछने लगा—'आप यहाँ कब आए ? अकेले आए या और भी कोई साथ में आया ?' मैंने कहा, 'एक हफ़्ता पहले एक जरूरी काम से आया था, और दो-तीन दिन में वापस चला जाऊँगा'।"

"सिर्फ़ इतनी ही बातें हुईं ?"

"नहीं, आप लोगों के विषय में भी पूछ रहा था। आपकी तबियत तो ठीक है ? सुधा तो अच्छी है ? और भी बहुत-सी बातें पूछ रहा था। मैंने कहा, मैं जरा जल्दी में हूँ, अगर हो सके, तो बँगले में मिल जाना। वह तैयार हो गया, बोला, आज शाम को आऊँगा, पाँच बजे के क़रीब। मैंने बँगले का पता दे दिया है।"

रायसाहब अत्यंत प्रसन्न हो बोले—"यह तुमने ठीक किया—बहुत ठीक। यह तुमने अच्छा ही किया, जो यह

न बतलाया कि हम भी यहाँ हैं, नहीं तो वह कभी नहीं आता।"

"क्यों ?" राजीव ने व्यग्रता-पूर्वक पूछा।

"ऐसे ही।" रायसाहब ने बात टालने की कोशिश करते हुए कहा—"वह बहुत ही अजीब आदमी है।" और उठकर बाहर चले गए।

राजीव ने भी अधिक कुछ नहीं पूछा। रायसाहब चुपचाप बाहर चले आए। राजीव अब अपने स्थान से उठा, और सुधा के सामने खड़ा हो गया। सुधा अचरज से उसे देखने लगी।

राजीव ने सँभलकर कहना शुरू किया—"सुधा कुमारी, मुझे अफ़सोस है, जिस भेद को आप मुझसे छिपाना चाहती थीं, वह अनायास ही मुझे मालूम हो गया। मिस्टर कृष्णा, आपके शब्दों में मिस्टर नंदन, मुझसे अधिक अच्छे चित्रकार हैं। उनके चित्र मेरे चित्रों की अपेक्षा कहीं सुंदर तथा भाव-पूर्ण हैं।" वह थोड़ा रुका।

सुधा जैसे आश्चर्य-सागर में ग़ोते मार रही थी।

राजीव ने उसी निश्चिंतता से फिर कहना आरंभ किया—"मुझे उससे भी अधिक अफ़सोस है कि उस दिन अपना अधूरा चित्र लिए हुए आपके मुँह से अनजाने ही एक सत्य निकल पड़ा था—'यह चित्र कभी पूरा नहीं हो सकता।' वास्तव में ही सुधादेवी, आपका अधूरा चित्र कभी पूरा नहीं हो सकता। कृष्णा इस जन्म में यह चित्र पूरा नहीं कर सकता।

वह अब कभी कोई चित्र नहीं बना सकता। जानती हो, क्यों ?......क्योंकि उसके हाथ जल गए हैं। वे उँगलियाँ, जिन पर कभी आपको नाज था, उँगलियाँ न रहकर जले हुए मांस के लोथड़े रह गई हैं, और अब उनसे तूलिका नहीं पकड़ी जा सकती। कृष्णा की महान् कला पर कभी न हटने-वाला ग्रहण लग गया है मिस सुधा!" उसके स्वर में कठोरता आ गई थी।

सुधा के मुख से बरबस एक चीख निकल पड़ी। "यह गलत है। ऐसा कभी नहीं हो सकता।" कहती हुई वह उठकर खड़ी हो गई।

"यह आप खुद देख लेंगी कि बात कितनी सही है, और कितनी गलत। आपका कृष्णा शाम को यहाँ आएगा, तब कृष्णा की चित्रकला की ट्रेजेडी आप उसके मुँह से ही सुन लीजिएगा।" राजीव के चेहरे पर दुष्टता-पूर्ण मुस्कराहट थी।

दाँतों-तले होंठ दबाकर सुधा अपने को सँभालने की कोशिश कर रही थी। राजीव की बात खत्म होते ही वह दोनो हाथों से अपना मुँह ढककर तेजी के साथ कमरे से बाहर निकल गई।

दबी हुई हँसी से राजीव के ओंठ विकसित हो उठे। उसका उद्देश्य पूरा हो चुका था।

ऊपर छत पर राजीव और रायसाहब शतरंज खेल रहे थे। नीचे बरामदे में सुधा कृष्णा की प्रतीक्षा कर रही थी।

पाँच बज चुके थे। साढ़े पाँच बजनेवाले थे।

बरामदे से फाटक तक काफ़ी लंबा चंपा-चमेली का बाग़ीचा था। सहसा पौधों की आड़ से सुधा ने देखा, एक आदमी फाटक पर आकर रुक गया, बँगले का नंबर देखा, और फाटक खोलकर अंदर घुसा।

सुधा का हृदय धक्-धक् करने लगा। वह खंभे की आड़ में हो गई।

आदमी निकट आता जा रहा था। अब उसने सिर ऊपर उठाया। सुधा ने पहचाना। वह कृष्णा था—दुर्बल, पीला-पीला और अस्त-व्यस्त।

मानसिक क्लेश मनुष्य में कितना परिवर्तन कर देते हैं ?...

कृष्णा बरामदे में आया। देखा, सामने सुधा खड़ी थी। बस, एकदम लौट चलने को हुआ। इसके लिये वह तैयार न था। वह मुड़ा।

"कृष्णा !" कृष्णा ने वही पूर्व-परिचित स्वर सुना।

कृष्णा ने अनुभव किया, इस संबोधन में कितनी मिठास,

कितना सौजन्य और आग्रह बिखरा हुआ है। वह ठिठक गया।

सुधा उसके पास आई। कहने लगी—"अंदर चलिए। पिताजी आपके इंतजार में हैं।"

कृष्णा कुछ बोल न सका, मंत्र-मुग्ध की भाँति सुधा के पीछे चलने लगा।

कमरे में पहुँच सुधा ने कुरसी की ओर इशारा करते हुए कहा—"बैठिए।" कृष्णा बैठ गया। सुधा भी पास की कुरसी पर बैठ गई।

दोनों खामोश रहे। कृष्णा केवल कभी उड़ती-सी निगाह सुधा पर डाल देता था, जो टकराकर लौट आती थी।

काफ़ी समय व्यतीत हो गया।

सुधा ने अपना हृदय कड़ा किया, और स्वर कुछ संयत। तब बोली—"नाराज़ होने का यह कौन-सा अरमान था ?"

"नाराज़, नहीं तो। मैं आपसे नाराज़ नहीं हूँ। हो भी कैसे सकता हूँ ? किस बूते पर ?" कृष्णा ने बहुत दर्द से कहा।

"जी हाँ, तभी तो उस रोज़ चुपचाप, बिना कुछ कहे-सुने, वहाँ से चले आए, और उसके बाद कुशलता का एक पत्र तक न दिया।" सुधा ने आहत अभिमान से कहा।

दुःख की छाया कृष्णा के चेहरे पर फैल गई, कहने लगा—"वह भी एक दुःख-भरी कहानी है सुधा कुमारी ! उस रात घर में आग लगी। चित्रों के साथ सारे अरमानों की भी होली हो

गई। मजबूरन् मैं वहाँ से चला आया। दुःख है, जल्दी में आपको खबर न कर सका।"

"वह मैं समझती हूँ, आप खबर क्यों नहीं कर सके?......आप आखिर हमें इतना ही पराया समझते थे? क्या हम लोग आपकी कुछ भी सेवा करने योग्य न थे?"

"आप लोगों के उपकारों को इस जन्म में नहीं भूल सकता। मैं आपके ऊपर और ज्यादा परेशानियों का बोझ नहीं लादना चाहता था। आप लोग व्यर्थ में मेरे लिये चिंता करें, यह मैं न चाहता था।"

"और आपके जाने के बाद क्या हम लोगों ने आपके लिये चिंता न की होगी? यह शायद आपने नहीं सोचना चाहा।"

"इसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। मुझे उस समय बिलकुल भी खयाल न आया कि आप अपना कुछ समय मुझ अभागे के लिये खर्च करेंगी!"

"आप दूसरों के विषय में कुछ खयाल नहीं कर सकते," सुधा ने रुँधे गले से कहा—"या आप खयाल ही नहीं करना चाहते। आपने कभी विचार किया—दूसरे आपके लिये कितना परेशान होते हैं?......पिताजी को आपके अकस्मात् चले जाने का कितना अधिक दुःख हुआ?......उन्होंने आपका पता लगाने में कितनी दौड़-धूप की?......आपको 'फ़र्स्ट प्राइज़' मिलने पर वह कितने खुश हुए?......आपके पत्र की कितनी उत्कंठा-पूर्वक राह देखी गई?......किसी ने

अपनी रातें आपकी याद और फ़िक्र में काट दीं ? अब तक धड़कते हुए हृदय से आपकी प्रतीक्षा की ? और, वही मनुष्य, जिसके लिये यह सब कुछ हुआ, आता है, और एकदम लौट जाने को उद्यत हो जाता है......।" सुधा न रह सकी, रो पड़ी।

कृष्णा अवाक् हो गया। एक क्षण तक वह सोचता रहा। तब 'सुधा' कह वह तत्काल आगे बढ़ा, और सुधा को अपने आलिंगन-पाश में ले लिया।

"मुझे क्षमा कर दो सुधा ! नारी-हृदय समझने में मैंने ज़बर्दस्त भूल की है। मैंने तो स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि तुम्हारे हृदय में मेरे लिये इतना स्नेह भरा पड़ा है। यह सत्य मेरी आशा के विपरीत था कि कोई मुझ अभागे की प्रतीक्षा भी कर सकता है ? मेरे लिये दो बूँद आँसू भी टपका सकता है ? मुझे माफ़ कर दो सुधा, मैं वास्तव में ही बहुत मूर्ख हूँ।" उसकी उँगलियाँ सुधा के रेशमी बालों से खेलने लगीं।

सुधा के आँसू तेज़ी से बहने लगे। कृष्णा ने कहा—"मुझे क्षमा कर दिया न सुधा ?"

सुधा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कृष्णा ने बहुत प्रेम से पूछा—"क्या अभिमान कर रही हो रानी ?......लेकिन मेरे पास तो तुम्हें मनाने के लिये कुछ भी नहीं है......कुछ भी नहीं।"

सुधा ने कृष्णा की ओर देखा। उसके आँसू थमने लगे।

कृष्णा ने मानो उस दृष्टि में सब कुछ पा लिया। सहसा कृष्णा को कुछ विचार आया। उसने शीघ्र ही सुधा को मुक्त कर दिया, और बोला—"लेकिन इससे क्या फ़ायदा? मेरे और तुम्हारे बीच जो दुर्भेद्य दीवार खड़ी हो गई है, वह अब टूट नहीं सकती। चाहते हुए भी मैं तुम्हें अपनी नहीं कह सकता। किस बिरते पर कहूँ?......हाँ, किस बिरते पर? आख़िर मेरे पास है क्या?......न मेरे पास रूप है, न पैसा, न आशियाना, न आशाएँ और न हृदय में उत्साह? मैं तो अब सिर्फ़ एक चलता-फिरता पुतला रह गया हूँ—लूला, हाथों से बेकार और झुलसा हुआ। तुम्हें अपनी बनाकर मैं तुम्हारा जीवन नष्ट करने का दुस्साहस नहीं कर सकता।" उसकी आँखों में असमर्थता के आँसू छलक आए।

सुधा एक क्षण चुप रही। तब उसने अपने आँसू पोंछे, और फिर कृष्णा के। कृष्णा उसे देखता रहा। सुधा कहने लगी—"तो क्या हुआ? ऐसी दशा में तो मेरा तुम्हारे निकट रहना और भी अधिक आवश्यक है। तुम्हारे साथ रहकर मैं तुम्हारे लिये काम करूँगी। तुम्हें अपने हाथों के बेकार होने का अनुभव तक भी न होने दूँगी। मैं तुम्हारे लिये लिखूँगी, तुम्हारे लिये चित्र बनाऊँगी। तुम्हारे लिये देखूँगी, तुम्हारे लिये सुनूँगी। तुम्हारे हृदय में नई आशा का संचार करूँगी।", और वह लजाकर चुप हो गई।

कृष्णा फूट पड़ा, बिलख-बिलखकर रोने लगा—"मेरी

समस्त साधना नष्ट हो गई। मेरा जीवन बेकार हो गया। आश्चर्य है, मैं जीवित कैसे हूँ। मैं अब चित्र नहीं बना सकता। मेरी चित्रकला निष्ठुर विधाता द्वारा छीन ली गई है, जो अब कभी नहीं लौट सकती। काश मेरे हाथ ठीक हो सकते! मैं एक बार फिर चित्र बना सकता! ये उँगलियाँ फिर एक बार तूलिका पकड़ सकतीं!" उसकी आवाज़ दर्द से भरी थी।

सुधा तुरंत बोली—"कौन कहता है, तुम इन हाथों से अब चित्र नहीं बना सकते? ये उँगलियाँ बेकार अवश्य हो गई हैं, लेकिन तूलिका पकड़ने की सामर्थ्य इनमें अब भी है। तुम्हें विश्वास हो या न हो, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है, तुम चित्र बना सकते हो। आओ, ज़रा मेरा वह अधूरा चित्र तो पूरा कर दो। वह अब तक पूरा नहीं हुआ है। वह तुम्हारी तूलिका के कंपन की प्रतीक्षा कर रहा है।"

सिर हिलाते हुए कृष्णा ने कहा—"नहीं, अब मैं चित्र नहीं बना सकता। इन टूटे हाथों से भला मैं चित्र बना भी कैसे सकता हूँ?"

"यही तो तुम्हारी विशेषता है। ठीक हाथों से तो सभी चित्र बना सकते हैं, लेकिन लूले हाथों से चित्र कौन बना सकता है? मुझे विश्वास है, तुम चित्र बना सकते हो। यह न भूलो, तुम संसार के एक श्रेष्ठ चित्रकार हो। चित्रकला तुम्हारी [illegible] है। तुम्हारे हाथ बेकार हो गए हैं, लेकिन तुम बेकार [illegible]

ही चित्र बना सकते हो। यही तुम्हारी कला की महत्ता है।"
उसके स्वर में अदम्य उत्साह था।

"मैं चित्र बना सकता हूँ ?" कृष्णा ने आशा-सहित पूछा—
"मैं चित्र बना सकता हूँ ?"

तमाम दुनिया यही कहे कि तुम चित्र नहीं बना सकते,
लेकिन मैं कहूँगी, अब भी तुम चित्र बना सकते हो। तुममें
वह शक्ति है।"

"मैं चित्र बना सकता हूँ। ये उँगलियाँ तूलिका पकड़ सकती
हैं।" कृष्णा ने दृढ़ विश्वास से कहा—"सुधा, मैं चित्र बना
सकता हूँ। सुधा, मुझे तूलिका दो, मैं चित्र बनाऊँगा। मैं अभी
चित्र बनाऊँगा—अभी। मैं फिर चित्र बना सकता हूँ।" वह
अपनी उँगलियाँ देखने लगा।

प्रसन्नता के कारण सुधा की आँखों में आँसू आ गए। वह
कृष्णा का हाथ पकड़ उसे बगलवाले कमरे में ले गई, जहाँ
राजीव का चित्र बनाने का सामान था। स्टैंड पर सुधा का
अधूरा चित्र था। कृष्णा ने कहा—"मैं पहले यही चित्र पूरा
करूँगा।"

सुधा पहले की भाँति मुस्कराती हुई रंग की प्लेट हाथ में
लिए, कृष्णा के निकट खड़ी हो गई। उसने अपने हाथ से
तूलिका कृष्णा की उँगलियों में पकड़ा दी। कृष्णा ने तूलिका
रंग में डुबोई और पट पर चलाने लगा, किंतु चला न सका।
तूलिका नीचे गिर पड़ी।

कृष्णा चिल्लाया—"नहीं, मुझसे चित्र नहीं बन सकता, कभी भी।"

"क्यों नहीं बन सकता ?" सुधा ने तूलिका उठा कृष्णा को पकड़ाते हुए कहा—"जरूर बनेगा, तुमने प्रयत्न ही कहाँ किया ? जरा प्रयत्न तो करो।"

कृष्णा में कुछ साहस आया। उसने चित्र पर फिर तूलिका चलाई। पहले तो तूलिका काँपी, और गिरने को हो गई, लेकिन उसके बाद एकदम सँभल गई, और फिर मंद गति से चित्र पर फिरने लगी।

कृष्णा हर्ष से चिल्लाया—"मैं चित्र बना सकता हूँ। सुधा, तुम ठीक कहती थीं। मैं फिर चित्र बना सकता हूँ, पहले की तरह। ओह सुधा !"

सुधा का गला रुँध गया, वह कुछ कह ही न सकी।

और जब राजीव तथा रायसाहब ने कमरे में प्रवेश किया, तो उनके अचरज का वारापार न रहा। उन्होंने देखा, सुधा स्वर्गीय मुस्कान चेहरे पर लिए, रंग की प्लेट हाथ में लेकर, खड़ी है, तथा कृष्णा तन्मयता-पूर्वक चित्र बना रहा है।